**डॉ. पार्थ सारथी पाण्डेय** का जन्म सन् १९७४ में बबुरा, विंध्याचल, जिला मीरजापुर, (उ.प्र.) में हुआ। आपने अंग्रेजी, हिन्दी व मनोविज्ञान से एम.ए , एम.एड व एम. फिल (शिक्षा शास्त्र) किया। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रजी में डी.फिल उपाधि तथा डॉ.बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय से शिक्षा शास्त्र में पी. एच.डी उपाधि से विभूषित हो चुके हैं। आप कई कॉलेज में निदेशक के पद पर रहें हैं। वर्तमान में आप गाँधी वोकेशनल बी.एड कॉलेज, गुना (म.प्र.) में प्राचार्य पद पर कार्यरत् हैं।

आप अनेक प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग, फार्मेसी व अध्यापक शिक्षण संस्थानों में गेस्ट फेकल्टी के रूप में आमंत्रित किये जाते हैं। जैसे केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, (विश्वद्यालय अनुदान आयोग की स्वायत्त संस्था ) के.पी. ट्रेनिंग कॉलेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबद्ध एक प्रतिष्ठित कॉलेज) आप निरंतर ही शिक्षा संबंधी कार्यों में व्यस्त रहते हैं। आपके द्वारा १५ पुस्तकों का लेखन कार्य तथा अनेक पुस्तकों में आपके लेख प्रकाशित हुए हैं। अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में आपके २५ से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं।

आप लगभग ५० से भी अधिक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सेमीनार/कांफ्रेंस व कार्यशालाओं में अपना प्रस्तुतीकरण भी दे चुके हैं तथा अनेक का सफलतापूर्वक संचालन भी कर चुके हैं। आपको सेमीनार, कार्यशालाओं के मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जा चुका है। आप जर्मनी के एक अंतर्राष्ट्रीय एजूकेशन जर्नल्स में एसोसिएट एडिटर तथा अमेरिका एवं जापान के अंतर्राष्ट्रीय एजूकेशन जर्नल्स में रिव्यूअर, नियुक्त किए गए है। आप कई राष्ट्रीय जर्नल्स में संपादक व मुख्य सलाहकार के रूप में भी नियुक्त हैं। अनेक मुक्त विश्वविद्यालयों जैसे वर्धमान वि.वि. कोटा तथा उत्तराखंड वि.वि., हल्द्वानी में आप विषय विशेषज्ञ के रूप में SLM तैयार कर चुके हैं। आपको अनेक शिक्षा पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

₹ 895/-

ISBN:978-93-313-2949-3

9 789331 329493

**APH** PUBLISHING CORPORATION
4435-36/7, Ansari Road, Darya Ganj,
New Delhi 110002 Email: aphbooks@gmail.com

भारतरत्न महामना पं० मदनमोहन मालवीय : शिक्षा दर्शन

डॉ. पार्थ सारथी पाण्डेय

APH

# भारतरत्न

## महामना पं० मदनमोहन मालवीय : शिक्षा दर्शन

डॉ. पार्थ सारथी पाण्डेय

# भारत रत्न पं. मदन मोहन मालवीय का शिक्षा दर्शन

# भारत रत्न पं. मदन मोहन मालवीय
# का शिक्षा दर्शन

**डॉ. पार्थ सारथी पाण्डेय**

**ए.पी.एच. पब्लिशिंग कार्पोरेशन**
4435-36/7, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

*Published by*
**S.B. Nangia**
**A.P.H. Publishing Corporation**
4435–36/7, Ansari Road, Darya Ganj,
New Delhi-110002
Phone: 011-23274050
e-mail: aphbooks@gmail.com

© Author

*Typeset by*
**Ideal Publishing Solutions**
C-90, J.D. Cambridge School,
West Vinod Nagar, Delhi-110092

*Printed at*
**BALAJI OFFSET**
Navin Shahdara, Delhi-110032

# विषय-सूची

**प्रथम अध्यायः प्रस्तावना** 1

**द्वितीय अध्यायः मालवीय जी का दार्शनिक चिन्तन** 12

2.0 भूमिका 12
2.1 धार्मिक दर्शन 15
2.1.1 धर्म 16
2.1.2 सनातन धर्म 18
2.1.3 ईश्वर 19
2.1.4 ईश्वर की खोज 21
2.1.5 ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा 22
2.1.6 घर–घर व्यापक राम रे 22
2.1.7 सच्चा तप 24
2.2 सामाजिक दर्शन 25
2.2.1 स्वयं के लिए दान नहीं 28
2.2.2 प्रयाग सेवा समिति 28
2.2.3 सनातन धर्म महासभा 30
2.2.4 साम्प्रदायिक एकता 32
2.2.5 स्त्री शिक्षा 32
2.2.6 स्वदेशी 34
2.3 राजनैतिक दर्शन 35
2.3.1 देश प्रेम और स्वराज्य 36
2.3.2 असहयोग आन्दोलन 37
2.3.3 राष्ट्रीयता एकता और साम्प्रदायिक सौहार्द 37
2.3.4 संघवाद और प्रान्तीय स्वायत्ता 38

2.4 शैक्षिक दर्शन 40
2.4.1 शिक्षा से दलितोद्धार 41
2.4.2 नौकरियों में आरक्षण नहीं 42
2.4.3 अर्थकारी शिक्षा 42
2.4.4 वैज्ञानिक शिक्षा का देशीकरण 43
2.4.5 छात्र और राजनीति 43
2.4.6 महामना का आर्शीवाद—सफलता व सुरक्षा का मूल मंत्र 43

**तृतीय अध्यायः मालवीय जी का शैक्षिक दर्शन 45**

3.0 भूमिका 45
3.1 मालवीय जी की दृष्टि में शिक्षा का महत्व 50
3.2.1 चारित्रिक विकास का उद्देश्य 60
3.2.2 नैतिक विकास का उद्देश्य 63
3.2.3 व्यावसायिक विकास का उद्देश्य 67
3.2.4 शारीरिक विकास का उद्देश्य 71
3.2.5 राष्ट्रीय विकास का उद्देश्य 75
3.2.6 सांस्कृतिक विकास 79
3.3 शिक्षा का स्वरूप 80
3.3.1 प्राथमिक शिक्षा 81
3.3.2 माध्यमिक शिक्षा 84
3.3.3 विश्वविद्यालीय शिक्षा 87
3.3.4 व्यावसायिक शिक्षा 90
3.3.5 कृषि शिक्षा 92
3.3.6 स्त्री शिक्षा 96
3.4 शिक्षण विधियाँ 98
3.4.1 आगमन व निगमन विधि 100
3.4.2 मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति 101
3.4.3 रचनात्मकता को प्रोत्साहन 101
3.4.4 सीखने का अवसर प्रदान करना 102
3.4.5 भाषा शिक्षण विधि 103
3.4.6 क्रिया एवं अभ्यास विधि 104



3.4.7 वैज्ञानिक विधि 105
3.4.8 स्वाध्याय एवं व्याख्यान विधि 105
3.4.9 दृश्य—श्रव्य साधनों का प्रयोग 106
3.5 शिक्षक-शिक्षार्थी 107
3.5.1 शिक्षार्थी 108
3.5.2 शिक्षक 114
3.5.3 शिक्षक—शिक्षार्थी सम्बन्ध 116
3.6 अनुशासन 117
3.7 माध्यम 119
3.8 पाठ्यक्रम 123
3.8.1 पाठ्यक्रम की रूपरेखा 128
3.8.2 अन्य पाठ्येत्तर क्रियाओं की शिक्षा 135
3.9 भाषा 135

**चतुर्थ अध्यायः निष्कर्ष 137**

**सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची 151**

# लेखक का संक्षिप्त परिचय

**डॉ. पार्थ सारथी पाण्डेय** का जन्म सन् 1974 में जिला मीरजापुर, (उ.प्र.) में हुआ। आपने अंग्रेजी, हिन्दी व मनोविज्ञान से एम.ए, एम.एड व एम.फिल (शिक्षा शास्त्र) किया। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में डी.फिल उपाधि तथा डॉ.बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय से शिक्षा शास्त्र में पी.एच.डी उपाधि से विभूषित हो चुके हैं। वर्तमान में आप गाँधी वोकेशनल बी.एड कॉलेज, गुना (म.प्र.) में प्राचार्य पद पर कार्यरत् हैं।

आप अनेक प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग, फार्मेसी व अध्यापक शिक्षण संस्थानों में गेस्ट फेकल्टी के रूप में आमंत्रित किये जाते हैं। जैसे केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, (विश्वद्यालय अनुदान आयोग की स्वायत्त संस्था) के.पी. ट्रेनिंग कॉलेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबद्ध एक प्रतिष्ठित कॉलेज) आप निरंतर ही शिक्षा संबंधी कार्यों में व्यस्त रहते हैं। आपके द्वारा 14 पुस्तकों का लेखन कार्य तथा अनेक पुस्तकों में आपके लेख प्रकाशित हुए हैं। अनेक प्रतिश्ठित राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में आपके 25 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं।

आप लगभग 50 से भी अधिक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सेमीनार/कांफ्रेंस व कार्यशालाओं का सफलतापूर्वक संचालन कर चुके हैं तथा अपना प्रस्तुतीकरण भी दे चुके हैं। आपको सेमीनार, कार्यशालाओं के मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता है। आप कई राष्ट्रीय

तथा अंतर्राष्ट्रीय जर्नल्स में संपादक व मुख्य सलाहकार के रूप में भी कार्यरत् हैं। अनेक मुक्त विश्वविद्यालयों जैसे वर्धमान वि.वि. कोटा तथा उत्तराखंड वि.वि., हल्द्वानी द्वारा आपको विषय विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित हो चुके हैं। आपको अनेक शिक्षा पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। आप NCTE द्वारा V.T Member के रूप में भी नियुक्त किए गए हैं। आप कई शिक्षक संघ के आजीवन सदस्य भी हैं।

## प्रथम अध्याय

# प्रस्तावना

शिक्षा के दो प्रधान पक्ष हैं। प्रथम चिन्तन और द्वितीय व्यवहार। आपसी व्यवहार करते समय अनेक समस्यायें हमारे सम्मुख आन खड़ी होती है। इन समस्याओं का समाधान चिन्तन के माध्यम से ही किया जा सकता है। शिक्षा का एक पक्ष जीवन के मौलिक पक्षों से भी जुड़ा है। जीवन के इन मौलिक प्रश्नों की व्याख्या दर्शन करता हैं। अतः दर्शन और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हैं। आज शिक्षा अपने मूल उद्‌देश्यों से भटक गयी है। आज भारतीय शिक्षा परिवेश इतना दूषित एवं कलुषित हो गया है कि इससे भय लगने लगा है कि कहीं यह राष्ट्र के पतन के गर्त में न ले जावे। भारत जो अतीत में ज्ञान स्थापना स्थल माना जाता था, जहाँ विदेशों से लोग केवल ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिये आते थे। आज उस अग्रगण्य शिक्षक राष्ट्र ने अपनी स्थिति काफी दयनीय बना ली है। शिक्षा में पतन का यह क्रम जो मध्य काल (मुस्लिम काल) से प्रारम्भ हुआ आज तक रूक नहीं पा रहा है। यद्यपि इसको रोकने के प्रयास स्वरूप ब्रिटिश काल में अनेकों आयोग तथा समितियाँ नियुक्त की गयीं ताकि भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रगति हो सके, किन्तु सभी तत्कालीन प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुये। आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अनेक भारतीय शिक्षा–विदों, राजनीतिक नेताओं तथा समाज सुधारकों ने अपने प्रयासों के माध्यम से शिक्षा के गिरते स्तर को उठाने का प्रयास किया, अनेक आयोगों की पुनः नियुक्ति हुई।

हमें अपनी शिक्षा प्रणाली में मूल्यों का मंथन व उनको आत्मसात करने की आवश्यकता है। मूल्य आधारित शिक्षा के माध्यम से ही हम अपना सामाजिक तथा शैक्षिक उत्थान कर सकते हैं। अतः शिक्षा में मूल्य सम्बन्धित व्यक्त किये गये विभिन्न विचारों को एकीकृत कर उनकों शैक्षिक पाठ्यक्रम में समाहित किया जाना आवश्यक हो गया है। एक शिक्षाविद् अपने अन्तःकरण को प्रस्फुटित करके एक शिक्षक की भाँति नवीन ज्ञान रेखा को प्रज्वलित करता है। जो समाज एवं संसार को अनोखी मानवीय दृष्टि देता है। प्रत्येक राष्ट्र की पहचान उसकी शिक्षा प्रणाली तथा मूल्यों द्वारा स्थापित मान्यताओं से होती है। राष्ट्र को जीवित रखने के लिये सरकार का सुदृढ़ होना आवश्यक है। वैसे ही सरकार को जीवित रखना उसके रूप पर निर्भर करता है। इस प्रकार से शिक्षा का विकास (प्रणाली) सरकार की क्रियाशीलता और जागरूकता पर निर्भर करता है। स्वतंत्रता के पश्चात प्रारम्भिक तौर पर परिवर्तनों के साथ अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को ही सरकार ने अपनी शिक्षा नीति बनाया था आज हमारी शिक्षा नीति, पद्धति, शिक्षा आयोगों, समितियों, शिक्षा नीति (1986), संशोधित नीति (1992) के आधार पर विकास के उच्च वैज्ञानिक आधार प्राप्त कर रही है। आज नवीन शिक्षाओं की अवध ाारणाओं से हमारी शिक्षा का भय और अधिक परिवर्तनशील और क्रांतिकारी हो रहा है। इसमें संस्थागत मूल्य, और प्रत्यावर्तित मूल्यों का समागम किया गया है। जो नागरिकों को संतुलित, समायोजित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक होते हैं। दार्शनिक चिन्तन के इतिहास में हम देखते हैं कि डैमॉक्रेट्स (यूनानी दार्शनिक) और कणादृ (भारतीय दार्शनिक) दोनों ने विश्व की संरचना की व्याख्या में ऐसे अनुवादी विचार दिये हैं जिनमें पर्याप्त समानता पायी जाती है। इसी प्रकार शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त और ब्रेडले द्वारा प्रतिपादित दर्शन में विलक्षण साम्य देखा गया है। ज्ञान



की अनेक विधाओं यथा शैक्षिक चिन्तन, कलागत चिन्तन, नीतिगत विचारों, धार्मिक चिन्तनों में भी साम्य देखें गये हैं और यह ध्यानेय है कि इस प्रकार के विचारों के बीच देश और काल की दूरी भी अत्यधिक थी। अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि जीवन, जगत, जीवन पद्धति एवं जीवन की अनेकानेक समस्याओं के सम्बन्ध में विराट विश्व के अर्न्तगत या तो विचारों की पुनरावृत्ति हुई है या पूर्व विचारकों के सिद्धान्त बीज के रूप में वर्तमान विचारकों के चिन्तन में वैसे ही प्रस्फुटित हुये जिस प्रकार से भूमि के अन्तर्गत दिया हुआ बीज कालान्तर में एक विशाल वट वृक्ष बन जाता है। मानव चिन्तन के क्षेत्र में यह स्वीकार्य तथ्य लगभग सभी महान विचारकों के लिये सिद्धान्त सा बन गया है कि दार्शनिक चिन्तन कभी भी विश्राम न पा सकेगा। क्योंकि वह उस अनन्त सत्य के मार्ग पर चल पड़ा है जो कभी चुकता नहीं है। क्योंकि जो चुक जाये वह सत्य नहीं है, हो सकता है यही कारण है कि मानव विकास के साथ साथ विविध दिशाओं की ओर उन्मुख ज्ञान के क्षेत्र में विस्फोट होता चला जा रहा है। आज वैज्ञानिक चिन्तन के फलस्वरूप प्राप्त उपलब्धियाँ मानव चेतना को इतने वेग से झंकृत कर रही हैं कि वह दिशाहीन सी हो गई है। यही कारण है कि हम ज्ञान की अनेक विधाओं के साथ–साथ मानवीय संस्कृति के प्राचीन रूपों को संक्रमण काल से गुजरता हुआ देख रहे हैं। हमारी शिक्षा, राजनीति, समाज दर्शन, मनोवैज्ञानिक उपलब्धियाँ, धार्मिक विश्वास, नैतिक मूल्य आदि सभी एक उत्कृष्ट संक्रान्ति से ग्रस्त हुये प्रतीत होते हैं। इसलिए समस्त दार्शनिक चिन्तन को मानव जीवन और उसकी नियमित एक पहेली सी लगती है। इसी पहेली का समाधान प्रस्तुत करने के लिये मेध ाावी विचारकों ने अथक प्रयास किया। फिर भी यह पहेली ही बना हुआ है। इस सन्दर्भ में महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी का नाम स्मृति पटल पर स्वमेय उदित हो जाता है।

भारतीय पुर्नजागरण की ज्योति जलाने वालों में राजाराम मोहन राय दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, मोतीलाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महामना मदन मोहन मालवीय, अरविंद घोष, महात्मागाँधी का स्थान प्रमुख है। शिक्षा के क्षेत्र में मालवीय जी ने पराधीन भारत में जो महत्वपूर्ण कार्य किया है। वह विश्व के इतिहास में एक अद्भुत घटना है। उनकी मान्यता थी कि राष्ट्रीय चरित्र के भविष्य के लिए आने वाली पीढ़ी को शिक्षा की उत्तमोत्तम व्यवस्था प्रदान की जानी चाहिए और राष्ट्र के विविध ध र्मावलम्बियों में राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की भावना शिक्षा द्वारा विकसित की जानी चाहिए। यही कारण है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु था।

शिक्षा तथा राष्ट्र सेवा के क्षेत्र में पं0 मदन मोहन मालवीय का स्थान सर्वोच्च है। वे शिक्षा, समाज और राष्ट्र को सब प्रकार से उन्नत देखना चाहते थे, अतः उन्होंने अपना समस्त जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करना उनके जीवन का ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है। जिसकी पृष्ठभूमि में उनका सर्वस्थ त्याग निहित है। इसके लिये उन्होंने सम्पत्तिदान, श्रमदान और जीवनदान की सम्मिलित क्रियाओं को लेकर सर्वोदय का अलख राष्ट्र में जगाया था। उनका यह कार्य आज की बिगड़ती हुई राष्ट्रीय तथा शैक्षिक परिस्थितियों में विशेष ध्यान रखता है।

मालवीय जी की शिक्षा के माध्यम से भारत में ऐसे 'व्यक्ति' के निर्माण के पक्षपाती थे, जो चरित्रवान होने के साथ–साथ आर्थिक, प्राविधिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण हो। वह इस योग्य हो कि अपनी जीविका प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता हो। उसे जीविका प्राप्त करने के लिए दर–दर की ठोकरें न खानी पड़ें।



मालवीय जी की मान्यता है कि यदि शिक्षा द्वारा इस प्रकार के "व्यक्ति" का निर्माण नहीं होता तो वह शिक्षा निरर्थक है। मालवीय जी शिक्षा व्यवस्था के व्यावहारिक तथा आजीविकार्जन पर आधुनिकतम शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे। शिक्षा में आमूल परिवर्तन संबंधी उनके विचार युग की माँग के अनुसार प्रगतिशील एवं आधुनिक है।

मालवीय जी के अनुसार – समाज के प्रत्येक व्यक्ति को मुख्य रूप से तीन प्रकार का ज्ञान होना चाहिए– आरोग्य ज्ञान, नीतिज्ञान और आत्मज्ञान। वैसे पहले से ज्ञान आज बहुत अधिक बढ़ा है और दिनों–दिन प्रगति की ओर ही है परन्तु दुनिया में आज जो अशान्ति, द्वेष और लड़ाइयाँ हैं वे ज्ञान से रूकेगी। भक्ति और प्रेम रूपी अहिंसा से मिटेगी। मालवीय जी ने स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर दिया और कहा, "आजकल की समाज व्यवस्था पुरूषों ने चलाई है पर अब यह उनके वश में नहीं। वे तंग आ चुके हैं। इसीलिए अब स्त्रियों से समाज चलेगा।"

मालवीय जी का हृदय छुआछूत तथा साम्प्रदायिक दुर्भाव की दुर्गन्ध से मुक्त था। इस्लाम धर्म की खूबियों को समझने के लिए उन्होंने एक वर्ष का कुरान शरीफ का मूल अरबी में अध्ययन किया। यह सही है कि धार्मिक अर्थों में वे संकीर्ण नहीं थे किन्तु वह धार्मिक तुष्टीकरण की नीति के भी समर्थक नहीं थे। उग्र साम्प्रदायिक दृष्टिकोण वाले मुसलमानों के प्रति उनका यह निवेदन उनकी स्पष्टवादिता तथा हिन्दू धर्म व जाति के प्रति श्रृद्धा को व्यक्त करता है कि, – "धर्म और संस्कृति के नाम पर मैं समस्त हिन्दुओं और मुसलमानों से अपील करता हूँ कि यदि वे चिरकाल तक शान्ति चाहते हैं तो वे एक हों जायें और अपनी रक्षा करें। यदि वे हिन्दुओं के साथ शान्ति से रहना चाहते हैं तो, निश्चय ही उन्हें हिन्दू धर्म का आदर करना पड़ेगा।"

सी0 एफ0 एन्ड्रूज का यह कहना है कि वर्तमान शताब्दी के अन्य किसी राष्ट्रीय नेता की अपेक्षा मदन मोहन मालवीय धार्मिक,

दृष्टिकोण से हिन्दू रूढ़िवादिता के परिपालक थे, बिल्कुल ठीक नहीं है क्योंकि वह अंतिम अवस्था तक धार्मिक रहते हुए भी राष्ट्रीय प्रश्नों पर प्रगतिशील रहे। वे हिन्दू संस्कृति की सर्वोच्चता में गहन आस्था रखते थे। उनके लिये राष्ट्रधर्म भी हिन्दू धर्म की सेवा का प्रतीक था। मालवीय जी के विचारों को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख तत्व निम्न थे –

- आधुनिक शिक्षा प्रणाली का कटु अनुभव जिससे उनका मन बचपन से ही शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न सुधार करने में लग गया था।
- भारतीय समाज का अंतरंग ज्ञान।
- शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रयोग और विचार।

मालवीय जी के सामाजिक विचारों में जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, इसके बारे में उनका मत है कि सबसे पहले लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा दी जाये। स्त्री तथा पुरूष की आत्मा एक समान संस्कारवान् होती है। इस विषय में दोनों में कोई भेद नहीं है। अतः समाज में स्त्री तथा पुरूष को एक समान शिक्षा मिलनी चाहिए और शिक्षा का पूर्ण तथा वास्तविक आधार आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। इसलिए उन्होंने पूरी शक्ति से देश सेवा करने का निश्चय किया और इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र "लीडर" के प्रकाशन में सक्रिय सहयोग दिया। इलाहाबाद का हिन्दू हॉस्टल तथा बनारस विश्वविद्यालय, उनके सत्त प्रयत्न के सफल प्रतीक हैं। 4 फरवरी 1916 को भारत के वायसराय "लार्ड हार्डिंग" ने विश्वविद्यालय स्थापना समारोह का शुभारम्भ करते हुए भवन का शिलान्यास किया। इसके "हिन्दू विश्वविद्यालय" नाम में गाँधी जी ने पूरी आस्था प्रकट की थी।

शिक्षा के क्षेत्र में मालवीय जी के विचार बहुत ही स्पष्ट हैं। उनका कहना था कि पाठशालाओं और कॉलेजों में ज्ञान को छोड़कर अन्य बहुत सी चीजें हमें पढ़ाई जायें ताकि कॉलेज छोड़ने के बाद हमारे सामने ज्ञान के ऐसे अनन्त दरवाजे खुल जायें, जिनसे व्यक्ति आगे चलकर अपना जीवन ठीक प्रकार से चला सकें। इसलिए बुनियादी शिक्षा में यह व्यवस्था की जाये कि कार्य से ज्ञान मिलें और ज्ञान से उपयोगी कार्य और दोनों के योग से बुद्धि का विकास हो। अतः उनका विचार था कि बच्चों को केवल शालाओं की कुंद और मनहूस दिवारों के अन्दर बन्द करके नही रखना चाहिए। वे समाज के लिए एक उपयोगी सदस्य के रूप में काम कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उनका बाह्य एवं व्यवहारिक वातावरण से भी साक्षात्कार कराया जाये।



मालवीय जी ने स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान आंग्ल भाषा का विरोध किया था लेकिन वे शिक्षण हेतु भारतीय भाषाओं के साथ–साथ अंग्रेजी और अरबों को भी महत्व देते थे। इसी कारण इलाहाबाद में 24 अक्टूबर 1908 को अंग्रेजों तथा अपनी आवाज पहुँचाने हेतु उन्होंने "लीडर" नामक अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन किया। उन्होंने भारतीय समुदायों और राष्ट्र की समस्याओं को सरल करने का मार्ग विकसित किया था। उनका उद्देश्य भारत की पिछड़ी स्थिति को सुधारने के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना था। उन्होंने अपने सीमित क्षेत्र में शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग प्रारम्भ किये। उन्होंने कहा कि जो शिक्षा सुव्यवस्थित रूप से बच्चे घर में अनायास पा जाते हैं, उससे विकसित संस्कार उन्हें पाठ्शालाओं तथा महाविद्यालयों में भी नहीं दिये जा सकते। स्वतन्त्रता तथा सम्मान का जो पाठ वे वहाँ सीखते हैं, वह अन्यत्र सुलभ नहीं है। अतः स्वतन्त्रता घातक स्कूल, कॉलेजों को उन्होंने छोड़ने का आहवान किया।

सन् 1936 में उनका ध्यान गोशालाओं की स्थापना में केन्द्रित हो गया था। गोवध बात सुनकर असहय पीड़ा होती थी। क्योंकि वह गाय को भारतीय कृषि व्यवस्था का आधार मानते थे। वे जीवन के सर्वोच्च विकास के लिए नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं को

विशेष महत्व देते थे। हमारा वर्तमान समाज जिन मान्यताओं को अपने अन्दर समाहित किए जा रहा है, उसका लक्ष्य भौतिक समृद्धि होने के कारण आध्यात्मिकता से दूर करना भी है। आज हमारे जीवन से प्रेम, सहयोग, सत्य, अहिंसा, सद्भाव और पारस्परिक विश्वास के सभी नैतिक मापदंड लुप्त होते जा रहे हैं। यदि समाज में भौतिकवाद का ही प्रधान्य रहेगा तब मनुष्य आध्यात्मिक सुख और वास्तविक विकास के निकट भी नहीं पहुँच सकेगा।

निषेधात्मक निर्देश जो मुक्त अभिव्यक्ति में बाधक होते हैं, उन्हें स्वीकार्य नहीं थे। छात्रों को दिये जाने वाले कठोर शारीरिक दंड के भी वे विरोधी थे। उनके दर्शन में सभी दर्शनों का किसी न किसी सीमा तक प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। जैसे – मानवतावादी दृष्टिकोण में उन्हें मानव की महत्ता, पवित्रता आदि के दर्शन होते हैं। मालवीय जी मानव की पूर्ण स्वतन्त्रता के समर्थक थे और इसके लिए वे आर्थिक स्वतंत्रता आवश्यक समझते थे। आदर्शवादी होते हुए भी वे यथार्थवादी विचारक थे। शिक्षा का तात्कालिक एवं संगीतपूर्ण विकास बताना उनके जीवन की याथर्थता का परिणाम है। उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन शुरू किया। संस्कृत और वैदिक साहित्य में उनकी विशेष रूचि थी। गुरू और शिष्य के रूप में दोनों का सामंजस्य उनके दर्शन में देखने को मिलता है।

साम्प्रदायिकता के वे मुखर आलोचक थे। सन् 1938 में अपने साम्प्रदायिक बंटवारे की नीति के आधार पर ही कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था और कहा कि "हिन्दू शब्द साम्प्रदायिक नहीं। साम्प्रदायिक शब्द 'सनातन धर्म' हो सकता है, लेकिन हिन्दू शब्द नहीं।"

अस्पृश्यता को वह हिन्दू समाज का कलंक मानते थे। इसलिए उन्होंने इस भावना से मुक्ति पाने की सजीव प्रेरणा दी। उन्होने कहा कि "अछूत को मत भूलो।" वे हिन्दू समाज के मुख्य अंग हैं। कौन नही जानता है कि हिन्दू धर्म संस्कार के सभी धर्मों में उदार है, हरिजनों के लिए भी हमारे वे ही शास्त्र हैं जो अन्य हिन्दुओं के लिए। हरिजन बन्धु बाहरी प्रलोभनों में आकर अपना धर्म न छोड़े, हम उनकी चरण रज लेने के लिए तैयार हैं। मालवीय जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार वर्तमान प्रचलित पुस्तकीय शिक्षा प्रणाली के विपरीत व्यवहारिक जीवन में उपयोगी, रोजगारपरक तथा व्यवहृत शिक्षा व्यवस्था पर आधारित थे, जो प्राचीन और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का समन्वय है। मालवीय जी के विचारों की भारतीय परम्परागत शाश्वत मूल्यों के केन्द्र बिन्दु में स्थित पाया गया है। किन्तु उनके विचार वैचारिक परिधि की स्वच्छन्दता की दिशा में पुनर्जागरण एवं परिवर्तन की सीमा में किस प्रकार क्रियाशील है यही इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य है।



मालवीय जी के शैक्षिक योगदान को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ कि उनके शैक्षिक विचारों का वैज्ञानिक मूल्यांकन किया जाये तथा उन्हीं के द्वारा स्थापित, उन्हीं के शैक्षिक सपनों को साकार करने के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के ऊपर यह उत्तरदायित्व और भी अधिक था कि मालवीय जी के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन करके उसे शैक्षिक जगत के समक्ष प्रस्तुत किया जाय, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में उनको उचित स्थान प्रदान किया जा सके। मालवीय जी शिक्षा को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया मानते थे। उनके विचार से "शिक्षा सभी उन्नति का मूल है।" इसलिये उन्होने शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से मानवता का विकास करने का प्रयत्न किया। शिक्षा की समस्या को वह सम्पूर्ण मानव की समस्या मानते थे। शिक्षा के माध्यम से शिक्षक मानवता को आपेक्षित स्वरूप प्रदान करता है। मनुष्य में एकता शांति और सद्भावना फैलाने के लिए शिक्षा ही एक सशक्त माध्यम है। उनके विचारों से विद्यालय का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो मनुष्यों के भीतर से घृणा और

द्वेष की भावना को मिटा सके। वे संसार के सभी ज्ञान को इसलिए एकत्र करना चाहते थे जिससे मानवता का कल्याण हो सके।

वे पूर्णरूप से आश्वस्त थे कि मनुष्य की सभी समस्याओं का समाधान शिक्षा के माध्यम से खोजा जा सकता है। इसलिए वे जन शिक्षा पर विशेष बल देते थे। शिक्षा के प्रसार से उनको बड़ी आशाए थीं। उनके विचार से लोगों में सहकारिता, कृषि, बैंकिंग एवं तकनीकी आदि की शिक्षा के विकास की परम आवश्यकता हैं। वे किसी भी सुध् ाार व उन्नति के लिए शिक्षा का प्रसार आवश्यक समझते थे। लेकिन यह एक बहुत महान कार्य है इसको अकेले न कोई व्यक्ति, न कोई राज्य और न कोई संस्था कर सकती है। इसलिए वे साधुओं से, सेवा निवृत्त व्यक्तियों से तथा छात्रों से शिक्षा का प्रसार करने के लिए अनुरोध करते थे। वे सभी शिक्षितों से अपने पड़ोसियों और नौकरों को शिक्षित करने का आग्रह करते थे। वे इस कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए शैक्षिक संगठन एवं सामग्रियों का निर्माण करने का सुझाव देते थे।

मूलतः मालवीय जी की शिक्षा सम्बन्धी परिकल्पना बहुत विस्तृत थी। वे शिक्षा का सम्बन्ध केवल देश की संस्कृति से ही नहीं जोड़ना चाहते थे। बल्कि वे चाहते थे शिक्षा ऐसी हो जो मनुष्य के चरित्र, देश भक्ति, समाज सेवा और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य निष्ठा की भावना से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ती हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना उन्होंने इन्हीं विचारों को मूर्तरूप देने के लिए की।

जे0 कृष्णमूर्ति एवं महामना जी के शैक्षिक विचारों का विशद अध्ययन मात्र शिक्षा जगत के लिए ही लाभकारी नहीं वरन् यह अध्ययन वर्तमान परिवेश की ज्वलन्त समस्याओं तथा साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, क्षेत्रीयवाद, शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्थाओं और मानव मूल्यों के ह्रास आदि की दिशा में सुधार का क्षेत्र है। महामना के



सम्बन्ध में समय–समय पर दिये गये महापुरूषों के वक्तव्य महामना का स्वरूप दर्शन कराने में सहायक सिद्ध होंगे।

पं0 जवाहर लाल नेहरू (1961) ने लिखा था "विभिन्न क्षेत्रों में उनकी लम्बी सार्वजनिक सेवा ने, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी विशाल शैक्षिक संस्था की स्थापना में उनकी सफलता ने, उनकी स्पष्ट सच्चाई और गम्भीरता ने, उनकी प्रभावशाली वाग्मिता ने उनके सरल स्वभाव और आकर्षक व्यक्तित्व ने भारतीय जनता को विशेष रूप से हिन्दू जनता को प्रिय बना लिया था और बहुत से वे लोग भी जो यदि उनसे सहमत नहीं थे और राजनीति में उनका अनुसरण नहीं करते थे। वे भी उनका आदर करते और उनसे स्नेह रखते थे। अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवा के कारण वे सबके स्नेह भाजक थे।

## द्वितीय अध्याय

# मालवीय जी का दार्शनिक चिन्तन

## 2.0 भूमिका

मानव विचार प्रधान प्राणी है। उसकी इस विचार प्रधानता का आधार बौद्धिक शक्ति है। उसकी चिन्तन प्रक्रिया उसे पशु कोटि से अलग करती है । विचार की पूर्णता में ही मानवता निहित है। विचार हीन मानव पशुता से भी एक कोटि आगे बढ़कर दानव बन जाता है । आहार, विहार तथा व्यवहारों में समानता होते हुए, भी मनुष्य पशुओं की अपेक्षा अपनी विवेक बुद्धि से ही महान बना है। इस विवेक बुद्धि को ''स्व'' के विकास हेतु संख्यातीत सम्वत्सरों की सीमाओं को पार करना पड़ा है। ज्यों–ज्यों उसकी इस शक्ति की समृद्धि हुई वह प्रगतिशील बना। किन्तु अभी वह अपने विकास की पराकाष्ठा पर नहीं पहुँच सका है । वस्तुतः मानव बुद्धिवादी पशु है और जब हम उसमें यह बुद्धि या विचार का अंश अदृश्य हो जाता है तो उसमें और पशु में कोई तात्विक भेद नहीं रह जाता है।

अतएव विचार का प्रारम्भ ही मानवता का श्रीगणेश व विचार का इतिहास ही मानवता का इतिहास है। विचार के उत्थान में ही मानवता का उत्थान निहित है । जब सही विचार अनेक वर्षों की अनुभूतियों से परिपक्व एवं दृढ़ स्वरूप प्राप्त कर लेता है, तो वही आचार के रूप में परिणित हो जाता है, जिसे दर्शन के रूप में स्वीकारा जाता है।





ज्ञान में ही मानव की पूर्णता निहित है। ज्ञान वह मार्ग जिसमें मानव की प्रवृत्ति बर्हिमुखी होती है । वह उसे लौकिक दर्शन की ओर ले जाती है, एवं दूसरा वह मार्ग है जो उसे श्रेय प्राप्ति तक पहुँचाता है, आत्म दर्शन कहलाता है । दिव्य दर्शन दिव्य दृष्टि पर निर्भर होता है, इसके अभाव से अर्जुन जैसे बल–बुद्धिमान को भी वह दिव्य दर्शन प्राप्त नहीं हो सका और उसके सखा श्री कृष्ण को दिव्य दृष्टि प्रदान करनी पड़ी। (गीता पृष्ठ– 118) दर्शन इसी दिव्य दर्शन का साधन है। अन्तर्जगत इसकी प्रयोगशाला है। यहाँ पर निर्मित आध्यात्मिक प्रयोगों के आधार पर वह सत्य का साक्षात्कार करता है तथा "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" (पाणिनी दृश– धातु) की शाब्दिक उत्पत्ति ही उसे चरम ज्ञान की सिद्धि कराती है। मानवीय इन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ, बहिर्मुखता त्याग कर जब अन्तर्मुखी हो जाती है और उनका कार्य केवल आत्म निरीक्षण करना ही रह जाता है तभी वास्तव में मानवीय विकास की पराकाष्ठा एवम् भारतीय परम्परा का परम प्राप्तव्य हो जाता है।

आत्म दर्शन के इस युग ने हमारी स्वतन्त्रता चिन्तन शक्ति को प्रेरित किया। इस प्रकार का साहित्य, किसी भी राष्ट्र के लिए गौरव की वस्तु होता है। मैक्समूलर के शब्द में –

> "यही राष्ट्र उस दिशा में सबसे अधिक गर्वशील है और इसकी ज्ञान परम्परा अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एवम् दृढ़ प्रभावशाली अनुभव सत्य से अधिक निकट है।'' **(भारतीय दर्शन– मैक्स मूलर–पृ0–8, प्राक्कथन)**

दार्शनिक विचार धाराओं से भारतीय जनमानस को निम्नलिखित लाभ प्राप्त हुए हैं–

- रागद्वेष का बहिष्कार
- विश्व बन्धुत्व

- जीवन की विशालता
- साहित्य की स्थायितुता

भारतीय दार्शनिकों की लम्बी परम्परा में 19वीं शताब्दी में प्रमुख दार्शनिक एवम् शिक्षाविद्

पंडित मदन मोहन मालवीय का अवतरण 25 दिसम्बर 1861 को प्रयाग में हुआ। आधुनिक भारत के लिए महामना की दार्शनिक विचारधारा अनुकरणीय है।

"विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राहयः प्रतिग्रहः।
गृह–प्रदातार मधो न धतयात्मानमेव वा।।
न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।
यत्र वृन्तमिमे में चोगे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम्।।
(भागवत गीता, पृष्ठ–310)

इन विचारों के अन्वेशक एवं समर्थक महामना जी मानव की इस सहज जिज्ञासा को कि वह गतिशील जगत के लक्ष्य का ज्ञापन करें, कि यह जगत कहाँ से चला और कहाँ इसका अन्त होता है ? मैं क्या कहूँ ? यह जीवन क्रम कब तक चलता रहेगा ? कोई भी व्यक्ति अपनी इन समस्त जिज्ञासाओं का जब तक स्वयं का आत्म विश्लेषण नहीं करता, कभी भी शांत नहीं कर पाता है, न ही यह जान पाता है कि किस पर अवलंबित रहते हुए वह अपने किया–कलाप कर रहा है। इस गूढ़तम जिज्ञासा को महामना ने साधारण एवं बोधगम्य शब्दों के माध्यम से हमारे समक्ष अपने वक्तव्य में इस प्रकार चित्रित किया है

"भारत वर्ष जो इस प्रकार भूमण्डल में सच्ची उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था और जिसकी हम महिमा गाते हैं और अपने भविष्य की निरन्तर उन्नति के लिए देशवासियों को उत्तेजित कर जिस बात का स्मरण कराते हैं। वह हमारे देश का दर्शन शास्त्र है । जिसके स्वरूप को देखकर पाश्चात्य विद्वानों की बुद्धि भी चक्कर खाने लगाती है। वह अपने ज्ञान और विचारों की उत्कृष्टता के कारण ही ऐसी उन्नत अवस्था को पहुँचा। पाश्चात्य देशों में ग्रीस भी अपने साहित्य और दर्शन के कारण विश्व में विख्यात हो गया। संसार में यदि कोई वस्तु चिरस्थाई है तो वह विज्ञान और विचार ही है। और देश के उन्नयन का अनुमान उसके आर्थिक स्वरूप से नहीं अपितु उसकी दार्शनिकता और आध्यात्मिकता की स्पष्टता से किया जाता है। इस दिशा में कार्य करने वाले व्यक्ति अन्य सांसारिक समस्याओं जैसे अन्न, वस्त्रादि से सर्वथा मुक्त रहते हैं।" **(भारतीय पुनर्जागरण और मदन मोहन मालवीय– के0डी0 द्विवेदी, पृ0–403)**



किसी भी व्यक्ति का दर्शन उसकी मान्यताओं, समझ एवं उसके प्रत्यय निर्माण को प्रभावित करता है। महामना मालवीय जी के जीवन इतिहास का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् यह परिलक्षित होता है कि हम उनके जीवन दर्शन को मुख्यतः चार भागों में विभक्त कर सकते हैं, जो निम्नांकित हैं –

- धार्मिक दर्शन
- सामाजिक दर्शन
- राजनैतिक दर्शन
- शैक्षिक दर्शन

## 2.1 धार्मिक दर्शन

पं0 मालवीय जी एक उच्च धार्मिक व्यक्ति थे। उनकी समस्त क्रियायें उनके धर्म, समातन

धर्म द्वारा निर्देशित होती थी जो कि उन्हें पृथ्वी मण्डल पर मौजूद सभी वस्तुओं में सर्वाधिक प्रिय था। वे सदैव अपने पास एक छोटी श्लोक पुस्तिका रखते थे, जिसको वे "हीरो की थैली" कहते थे।

**(रामनरेश त्रिपाठी, तीस दिन मालवीय जी के साथ, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, 1946, पृ0—219)**

### 2.1.1 धर्म

पं0 मालवीय जी के अनुसार धर्म की एक विस्तृत परिभाषा थी। उन्होंने स्वयं अपने व्यक्तिगत धर्म के विषय में कहा है —

"घर में ब्राह्मण धर्म है, परिवार में सनातन धर्म है, समाज में हिन्दू धर्म है, देश में स्वराज्य धर्म है और विश्व में मानव धर्म है। **(जीवन झाकियाँ, पृ0—202)**

इस सूत्र—बद्ध व्यक्तिगत धर्म को समझने के पहले हमें यह देखना है, कि वे 'धर्म' को किस अर्थ में लेते थे, क्योंकि वे प्रायः कहा करते थे कि—

"सिर जावे तो जाय, प्रभु मेरो धरम न जाय, 'धर्मो रक्षति रक्षिता', 'जो हइ राखे धर्म को तेहि राखे करतार', 'धर्मो विश्व जगतः प्रतिष्ठा' आदि।" उनका मानना था कि — "सबसे बड़ा उपकार जो किसी प्राणी का कोई कर सकता है, वह यह है कि उसको धर्म का ज्ञान करा दे, धर्म में उसकी श्रृद्धा उत्पन्न कर दे अथवा दृढ़ कर दे। संसार में धर्म के समान कोई दान नहीं।" **(लेख और भाषण—धार्मिक, पृ0—166 )**

यह भी कि— "पृथ्वी मण्डल पर जो वस्तु मुझको सबसे प्यारी है, वह धर्म है और वह सनातन धर्म है।'' उपर्युक्त उदाहरणों से विदित होता है कि वे धर्म को धारण करने के अर्थ में ही लेते थे। जिस आस्था, भावना, गुण एवं कर्म को धारण करने अथवा अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रकट करने से व्यक्ति के साथ—साथ समष्टि का सर्वागींण अभ्युदय होता है, जिससे सुख, शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति होती



हो, वही धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु का अपना भिन्न—भिन्न धर्म है। मालवीय जी के अनुसार—

"धर्म बड़े—बड़े गुणों का समूह है। वस्तुतः धर्म उन व्यवस्थाओं, उन नियमों का नाम है, जो समाज को, राज्य के विभिन्न अंगों को धारण किये रहते हैं। धर्म के जो मूल सिद्धान्त हैं, उन सबका उद्देश्य देश में शान्ति, समृद्धि और सुख उत्पन्न करना है तथा मनुष्य की पारलौकिक गहन विषयों का चिन्तन करने के योग्य बनाना है। वे धर्म को 'लोक संग्रहकारी शक्ति' मानते थे। किन्तु धर्म नित्य है, धर्म कभी नहीं बदलता। यदि प्रमाण भी जाता है तो धर्म न त्यागो। स्पष्ट है कि सृष्टि के शाश्वत मूल्य ही, जो अनादिकाल से अब तक बने हुए हैं और जो भी आगे रहेंगे अथवा जिनकी कामना सदा की गयी है, धर्म है।" **(अभ्युदय, 2 मई 1908)**

सृष्टि में तन धारण करने वाला समस्त प्राणी पाँच विकारों काम, क्रोध, मद, माया, लोभ से

ग्रस्त होता है और जिन यम—नियमों के पालन से इन विकारों से मुक्ति मिलती है, वह धर्म है। इन विकारों से मुक्ती दिलाना ही सनातन धर्म का चरम लक्ष्य है। महामना कहते हैं, —

"मनुष्यों में और दूसरे जीव—धारियों में आहार—नींद, भय, मैथुन समान होते हैं, मनुष्यों में केवल धर्म ही एक विशेषता है। जिनमें धर्म की भावना नहीं है, वे मनुष्य पशु के समान हैं। **(लेख एवं भाषण (धार्मिक), पृ0—175—178)**

महामना ने सनातन धर्म का निचोड़ बताते हुए कहा है, "जो अपने को प्रतिकूल जान पड़े, जिस बात से अपने को पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरों के प्रति न करो।" दूसरे के प्रति हमें वह कामना नहीं करनी चाहिए, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो

या दुःख हो। संक्षेप में यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बात की कामना से किये जाते हैं —

"न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एश सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते।।

कहने की आवश्यकता नहीं, पं0 मालवीय जी का धर्म विषयक दृष्टिकोण सदाचार, शिष्टाचार एवं लोकाचार प्रधान है। वह मानवीय मूल्यों से सम्बन्धित है। वे लोक—सेवा, लोक—संग्रह, लोक के लिए सर्वस्व समर्पण, उसी के सुख में सुख एवं दुःख का अनुभव करने आदि को परमधर्म बताते हैं। यह धर्म 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' की अनुभूति पर आधारित है। अतः वे मनुष्य तथा समस्त जीवों की सेवा, उसके प्रति करूणा को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ आराधना मानते हैं। यहाँ देश भक्ति का अर्थ हुआ 'लोक—भक्ति'। निर्धनता, निर्बलता, अज्ञानता एवं अन्य किसी भी तरह के कष्ट में पड़े हुए प्राणियों को उस कष्ट से मुक्त करना ही एक मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धर्म है, यही सनातन धर्म है और महामना के जीवन का एक मात्र धर्म भी यही है ।

### 2.1.2 सनातन धर्म

महामना जी का मानना था कि सनातन धर्म पृथ्वी पर सबसे पुराना और पुनीत धर्म है। यह वेद, स्मृति और पुराण से प्रतिपादित है। संसार के सब धर्मों से यह इस बात में विशिष्ट है कि यह सिखाता है कि इस जगत् का सृजन, पालन और संहार करने वाला आदि सनातन, अज, अविनाशी, सत्—चित्त—आनन्द—स्वरूप, पूर्ण प्रकाशमय परब्रह्म, परात्मा है। और यह कि यह परमात्मा मनुष्य से लेकर सिंह, हाथी, घोड़े, गौ हिरन आदि सब थैली से उत्पन्न होने वाले जीवों में, अण्डों से उत्पन्न सब पखेरूओं में, पृथ्वी फोड़कर उगने वाले सब



वृक्षों में और पसीने और मैल से उत्पन्न होने वाले सब कीट—पतंगों में समान रूप से बस रहा है।

एश धर्मो महायोग दानं भूतदया तथा।
ब्रह्मचर्य तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेत् सनातनम्।।

यह धर्म बड़े—बड़े गुणों का समूह है। दान, जीव मात्र पर दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, दयालुता, धैर्य और क्षमा इन गुणों का योग सनातन धर्म का सनातन मूल है। इन गुणों के कारण भी सनातन धर्म अन्य धर्मों में विशिष्ट है। मालवीय जी महाराज ने सनातन धर्म को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि,—

"पृथ्वी मण्डल पर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातन धर्म है। यह उदार धर्म है। यह केवल मनुष्य मात्र में ही भाईपन का भाव नहीं समझता, बल्कि यह मानता है कि सृष्टि में जितने जीव—जन्तु आदि प्राणी हैं, सबमें एक परात्मा की ज्योति प्रकाश कर रही है। सनातन धर्म प्राणि मात्र में समता का भाव सिखाता है।

इस भाव को भगवान कृष्ण ने अपने श्रीमुख से भगवद्गीता में स्पष्ट कह दिया है —

विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिन।
शुनि चैव श्रृपाके च पण्डिताः सम दर्शिनः।।

### 2.1.3 ईश्वर

महामना जी सनातन धर्म के कट्टर समर्थक थे। उनका सम्पूर्ण झुकाव अमूर्त एवं अव्यक्त उस अलौकिक शक्ति के प्रति था, जिसे वह अनादि, अनन्त एवं एक शाश्वत सत्य के रूप में ग्रहण करते हैं।

महामना ने 2 जून 1912 में प्रकाशित अपने लेखों में इस विषय पर प्रकाश डाला है, उसके कुछ अंश निम्न प्रकार हैं –

"उस अलौकिक शक्ति के प्रकाश से अभिभूत हो, हमारे ज्ञान सुख स्वच्छता, द्वेष और मनोविकार सभी सीमाबद्ध हो जाते हैं, क्योंकि शरीर अनादि अनन्त नही है। यदि हम स्वयं को अपने शरीर एवं अपनी परिस्थितियों से पृथक कर सके, तभी हमें अपना पूरा ज्ञान होगा और उसी समय स्वयं को स्वतन्त्र, स्वच्छन्द, अनादि और अनन्त परम तेजोमय एवं दिव्यानन्द में निमग्न समझ सकेंगे। उस समय हमको अपना पूर्ण ज्ञान हो सकेगा, हमारा सब पर अधिकार हो जायेगा और हम समझ सकेंगे कि सबकुछ हमारे भीतर ही है। इसमें निस्सीम दिव्य शक्ति का निरन्तर प्रवाह हो सकेगा।" **(महामना मदन मोहन मालवीय–जीवन और नेतृत्व–मुकुट बिहारी लाल–वाराणसी अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय–1978)**

अहं ब्रह्मास्मि सूत्र को ही मानो। यहाँ महामना ने अपने तरीकों से प्रतिपादित किया है। ब्रह्मा व्यक्ति के स्व में ही निहित होता है, बाह्य जगत में नहीं। जैसा निम्न कथन से स्पष्ट है क्योंकि जब मानव सांसारिक मोह– झगड़ों से विरक्त होता है, उस समय स्वभावतः उसका मन स्व की ओर प्रवृत होता है। उसी समय से मानव की दर्शन और वेदान्त समझने का पूरा माहौल मिलता है और उसे अद्वैत वेदान्त जैसे दुरूह तत्व पर विचार करने का अधिकार हो जाता है। क्योंकि उसी समय से मानव अपने आस्तित्व पर विचार करना प्रारम्भ करता है, वह जानने को उत्सुक होता है कि वह स्वयं क्या है ? संसार से उसका सम्बन्ध क्या है ? वह स्वतन्त्र है या परतन्त्र ? यदि परतन्त्र है तो मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है।

महामना की श्रीमद् भागवत से दृढ़ निष्ठा थी। भागवत में प्रतिपादित अद्वैतवाद और ईश्वरवाद का तथा भक्ति और निष्काम



सेवा का सामंजस्य उन्हें स्वीकार था। वे ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता, नियता तथा व्यवस्थापक एवं सम्पूर्ण विश्व का कारण समझते थे। महामना के विचार से यह अद्वितीय शक्ति निःसन्देह अविनाशी, सर्वव्यापक स्वरूप एवं अनन्त है। वे 'एक मेवा द्वितीयम् ब्रह्म' के सिद्ध ान्त को स्वीकार करते हुए 'ब्रह्मा', 'विष्णु', 'महेश' को इस ब्रह्म की तीन संज्ञायें मानते थे और सब देवी देवताओं को उनकी विभूतियाँ समझते थे। वे वेद व्यास जी के इस तथ्य से सहमत थे कि 'ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु' अर्थात् यह ज्योति अपने भीतर ही है, अन्यत्र नहीं और सभी जीवधारियों में एक समान है।

## 2.1.4 ईश्वर की खोज

मालवीय जी के अनुसार–

"ईश्वर को कोई आँखों से नहीं देख सकता, किन्तु हममें से हर एक मन को पवित्र कर विमल बुद्धि से ईश्वर को देख सकता है। इसलिए जो लोग ईश्वर को मन की आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं, वे उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र कर और बुद्धि को विमल कर ईश्वर की खोज करे।"

ज्ञान, विवेक, प्रज्ञा, प्रतिभा, बुद्धि (अर्थात् तर्क) की प्राप्ति ही ईश्वर की प्राप्ति है। वह "सर्व खल्विदं ब्रहम", 'ऊँ इति एकाक्षर ब्रहम', 'एकोऽहं बहुस्यां प्रयायेय' में विश्वास करता है, जो कि विश्वबन्धुत्व, विश्वमानव, समुदाय एवं विश्व शान्ति का ठोस आधार है। यह हमें इस बात का ज्ञान कराता है। कि ईश्वर सर्वत्र सभी जीवों में है, इन जीवों की रक्षा, सहायता तथा उनके प्रति स्नेह द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। मालवीय जी महाराज इन्ही विचारों को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहतें हैं कि–

जाहिर है कि शरीर मन और बुद्धि को निर्मल बनाना ही सच्ची आस्तिकता है। ब्रहम एक ज्योति है, जिसे अपने व्यक्तित्व की पवित्रता

द्वारा जगाया जा सकता है। "समस्त ज्योतियों की वह ज्योति है, समस्त अन्धकार के परे चमकता हुआ ज्ञान स्वरूप जानने योग्य, जो ज्ञान से पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुदृढ़, सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ है। इस तरह ज्ञान एवं विवेक ही सारे सुखों तथा उन्नति के मूल है । ब्रह्म सत्य एवं ज्ञानमय है 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।" पं0 मालवीय जी आधुनिक भारत में इसी ज्ञान की ज्योति जलाने आये थे। **(धार्मिक लेख एवं भाषण, पृष्ठ0– 20–41, ईश्वर विषयक लेख )**

"एक ही परमात्मा सब प्राणियों के भीतर छिपा हुआ है, सब में व्याप रहा है। जो कुछ कार्य सृष्टि में हो रहा है, उसका वह नियन्ता है ईश्वर! र्स्वभूतनां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। (गीता 18/61) ऐसे घर घर व्यापक उस एक परमात्मा की मनुष्यमात्र को विमल भक्ति के साथ उपासना करनी चाहिये।

## 2.1.5 ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा

महामना जी कहते हैं कि "ईश्वर की सबसे उत्तम पूजा यही है कि प्राणी मात्र में ईश्वर का भाव देखे, सबसे मित्रता का भाव रखें और सबका हित चाहें। सर्वजन प्रेम देखें। सत्य ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें। जगत से अज्ञानता दूर करें। अन्याय व अत्याचार को रोकें, सत्य न्याय तथा दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीत, सुख और शान्ति बढ़ावें। मनुष्यों की सेवा द्वारा ही ईश्वर–सेवा सर्वोत्तम है।

## 2.1.6 घर-घर व्यापक राम रे

श्री राम नाम, श्री भगवान का एक विशिष्ट नाम है। इसकी महिमा अनन्त है। शास्त्रों ने इसी को "तारक ब्रहम" कहा है। यह प्रणव से अभिन्न है। (भूमिका, पृष्ठ–449, भारतीय संस्कृति और साधना,



प्रथम खण्ड म0म0 गोपीनाथ कविराज जी) इसी पथ के साधक पूजा महामना जी कहते है –

'जय रे' उद्बोधनार्थ संबोधन है 'रे' जय तात्पर्य है केवल बहस से सत्य का साक्षात्कार संभव नहीं, क्रिया में उतारों और वह क्रिया है 'जय' नाम है 'राम', किन्तु 'घर–घर व्यापक', इस भाव से युक्त नाम का जय होना चाहिए। प्रश्न है, इसकी आवश्यकता क्या है ? महान शिक्षाविद् महामना जी इसका उत्तर देते हैं। "हम धर्म को चरित्र निर्माण का सीधा मार्ग और सांसारिक सुख का सच्चा द्वार समझते हैं। हम देश भक्ति को सर्वोत्तम शक्ति मानते हैं, जो मनुष्य को उच्च कोटि की निःस्वार्थ सेवा करने की ओर प्रवृत्ति करती है ..... "यह शरीर परमात्मा का मंदिर है। ईश्वर को सदैव अपने भीतर अनुभव करो और इस मंदिर को कभी अपवित्र न होने दो।"......"इस पवित्र मंदिर का रक्षक ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार को जीत सकते है ..... हिन्दू विश्वविद्यालय की संस्थापना विद्यार्थी के भीतर शारीरिक बल के साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिए हुई है, इसे सदैव स्मरण रखो। **(वचनामृत, पृ0–320–323, महामना मालवीय जी के लेख और भाषण, धार्मिक)**

विश्व के भौतिक सुखों की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य नहीं बनाना है, अपितु "मत कर वैर, झॅइ मत भाषे' – इसका अभिप्राय 'राज तरंगिणी' के इस छंद से स्पष्ट हो जाता है – "पूर्ण प्रजा सृज इवाददभुत व स्तुतत्व व्यावर्णनेन कुतुकं जनयन्ति तज्ज्ञाः। बाला स्वाल्पमति हार्यधियश्च सन्ति प्रायः प्रज्ञावन्तो शून्य मनोऽनुभावः।" झूठी बाते गढ़ने में निपुण धूर्त लोग सृष्टि कर्ता की तरह अपनी स्वार्थ भरी बातों का जाल इस तरह फैलाते हैं कि लोगों के हृदय में उत्सुकता उत्पन्न कर देते हैं। तब उनके मायाजाल में बच्चों जैसी अल्प बुद्धि वाले लोग ही नहीं, अनियंत्रित मन वाले बड़े–बड़े बुद्धिमान भी फँस

जाते हैं, यही है झँइ 'झूठइ लेना झूठइ देना। झूठई भोजन झँइ चबेना।' ऐसा जीवन नहीं जीना चाहिए। उन जीवों को नहीं मारना चाहिए जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी हों अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरे के धन व प्राण पर आक्रमण करते हों और जो किसी के घर में आग लगाते हो। ऐसे लोगों को मारे बिना यदि अपना या दूसरों का प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है। (महामना कृत हिन्दू धर्मोपदेश) 'जुआ मत खेलो। मत पर तिप लख यही तेरो पर रे।' अर्थात् उपर्युक्त तप को जीवन का अभिन्न अंग बनना चाहिए। यदि तप की ओर मन को उन्मुख न किया जाए तो मन भोग के चिन्तन में तल्लीन होने लगेगा। इसका परिणाम है 'भोगरोगमय' अर्थात् निशिद्ध भोग का निरन्तर चिन्तन ही असंख्य जटिल मानसिक व्याधियों को उत्पन्न कर देता है, जिससे व्यक्ति के मन में मानसिक ग्रन्थियों (काम्पलेक्स) की ऐसी गूढ़ और स्थायी खामियाँ स्थान जमा लेती हैं कि वह व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण और संतुलित विकास करने में असमर्थ हो जाता है अतः महामना जी उपदेश देते हैं–

घट–घट व्यापक राम जय रे।<br>
मत कर पैर, झँइ मत भाषे, मत पर धन हर, मत मद चाखें<br>
जीव मर मार जुआ मत खेलै, मत परतिप लख, यही तेरो तप रे।।

### 2.1.7 सच्चा तप

महामना जी तप के वास्तविक अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

"प्रायः ग्रीष्म ऋतु में मध्ह्यान के समय चारों ओर अग्नि जलाकर, सर्दी में जल के अन्दर रातें काटना, पाँव में रस्सा डालकर उल्टे लटकाना या झूला–झुलाना, लोहे की कीलों पर नंगे पैर बैठना, नखों और बालों को बढ़ाना, उपवास करना, हाथों और पैरों को बेकाम कर देना, मौन धारण करके वाणी से किसी प्रकार की वार्ता न करना। इस प्रकार के तमाशेबाजी को तप समझा जाता है, परन्तु वास्तव में यह तप नहीं है। जिस प्रकार हीरे को जलाने से कोयला रह जाता है और वह अपने असली मूल्य को भी खो देता है, उसी तरह ये वृथा–नामधारी तपस्वी अपने शरीर और आयु को नष्ट करते हैं। परमात्मा ने हमको यह शरीर इसलिए नहीं प्रदान किया कि हम इसको वृथा क्षीण करें, बल्कि यह शरीर एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा आत्मा परमात्मा तक पहुँच सकता है। अतः ऐसा तप करना बहुत अनुचित है, आत्मघात है, आत्मा और शरीर की शक्तियों के विकास रोकने वाला हैं ये मूर्ख लोग इस दुष्प्राप्य मानव–जीवन को नष्ट करते हैं और न तो अपने को ही लाभ पहुँचाते हैं और न दूसरों को।"



जो लोग निष्काम भाव से काम नहीं करते, उन लोगों में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो जाते है और सफल नहीं होने पाता। किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है, वहाँ लोग एक–दूसरे की सफलता देखकर प्रसन्न होते हैं, एक–दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है और कार्य में शीघ्र की सफलता प्राप्त होती है। सकाम भाव से कर्म करने वालों को आपत्तियाँ काम करने से विमुख कर देती हैं। "तप से अभ्युदय और निःश्रेयय, स्वर्ग और मोक्ष, धन और संपत्ति, बल और पराक्रम, सुख और शान्ति, राज्य और अधिकार सबकी प्राप्ति होती है और होगी।"

## 2.2 सामाजिक दर्शन

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार महामना की जन्म–कुण्डली में मणि कांचन योग मिला था। इतिहास के काल खण्ड में सैकड़ों वर्षों के अन्तराल पर इस प्रकार के मनीषी का अवतरण होता है। आत्मोत्सर्ग, परदुख का तरता, कारयित्री प्रतिभा, दूरगामी दृष्टि एवं अगाध करूणा से विभूषित जातक इस कोटि में आते हैं। सामाजिक

विप्लव, राजनैतिक उत्कर्षापर्क, नैतिक ह्रास, काल–खण्ड के परिवर्तन के परिचायक हैं। भारतीय जनमानस की जिन विक्षुब्ध परिस्थितियों ने साहित्य के क्षेत्र में छायावाद को जन्म दिया, राजनीति के प्रांगण में गांधीवाद को अर्विभूत किया, उन्हीं उद्वेलित और संक्रमण–कालीन विभीशिका से उत्प्रेरित होकर भारतीय चिन्तकों ने संस्कृत जागरण की बहुमुखी विकासधारा को पाथेय समझा महामना मालवीय का अवतरण सांस्कृतिक पुनर्जागरण का जाज्वल्यमान उदाहरण है। भारत में अंग्रेजों का आगमन और अंग्रेजी राज्य की स्थापना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। वह लहर थी उस सामाजिक उथल–पुथल की जो पश्चिम में नये वैज्ञानिक ज्ञान और प्रकाश के कारण उत्पन्न हुई थी। मालवीय जी ने कहा था –

"ईश्वर की सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणी मात्र में ईश्वर भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव देखें, सबका हित चाहें। सार्वजनिक प्रेम से इस सत्य–ज्ञान के प्रचार से ईश्वर भक्ति का संगठन और विस्तार करें। जगत से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावे।' **(महामना पंडित मदन मोहन मालवीय : सम्पादक– पंडित सीताराम चतुर्वेदी)**

पूज्य मालवीय जी आत्म–शुद्धि, बंधुत्व–वृद्धि और विश्व कल्याण को नैतिक सत्य मानते थे। वे नैतिक जीवन के लिए तीनों को आवश्यक समझते थे। सनातन धर्म का प्रचार–हिन्दू संस्कृति की रक्षा, देश की स्वतंत्रता, गौवों की सेवा, सामाजिक कुरीतियों का विरोध, स्वयं सेवकों का संगठन, ज्ञान–विज्ञान की वृद्धि, शिक्षा का विस्तार आदि क्षेत्रों में उन्होंने समाज का नेतृत्व किया। पंडित जवाहर लाल नेहरू का यद्यपि कई राजनैतिक मामलों में महामना से मतभेद रहा किन्तु उन्होंने जो लिखा है वह उल्लेखनीय है –



"मालवीय जी एक महामानव थे। वे उन लोगों में से थे जिन्होंने आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता की नींव डाली।" **(कामेमोरेशन वाल्यूम 1961, पृ0–61)**

मालवीय जी जन्मसिद्ध सच्चे नेता थे, जिनके कल्पनाशील मन में उज्जवल कर्म के नये–नये भाव आते रहे। वे आजीवन आत्माहुति के लिए कटिबद्ध रहे। "हवि रस्मि नाम" – मेरा नाम हवि है। यह मंत्र जिसे सिद्ध हो वही नेता है जो समाज की वेदना को अपनी कसक बना लेता है। वही नेता है। सच्चे नेता के करूणापरक कर्म से भगवान की शक्ति व्याप्त हो जाती है उसी प्रेरणा के स्रोत अमर होते हैं। वह मिट्टी के उपकरण से लोहे के व्यक्ति ढालता है मालवीय जी में नेत्रृत्व का ऐसा ही अद्भुत गुण था। वे राष्ट्र के कल्याण और हिन्दू जाति के कल्याण को सर्वथा अभिन्न मानते थे। जो भारत माता को अपनी मातृ भूमि समझे वही सच्चा हिन्दू है। हिन्दू की यही अटूट परिभाषा है, दूसरी नहीं। महामना का अभीष्ट था

– "माता भूमि पुत्रोऽहं पृथित्यां" जो इस राष्ट्रीय सच्चाई को सब काल में ह्रदय से मानता है, वही भारतीय है, और वही हिन्दू है। महामना उसी अखण्ड ज्योति का साक्षात्कार किया था जो जीवन के शाश्वत मूल्य में आस्था रखती है और जिसका अखण्ड अनुभव ही भारतीय संस्कृति का चिरंतन प्रवाह है।

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणि नामार्तिनाषनम्।।"

"मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता और मोक्ष भी नहीं चाहिए, मेरी केवल एक ही अभिलाषा है कि जो बंधे हैं उनके बंधन दूर हों, जो दुखी है उन्हें शान्ति प्राप्त हों।" इन भावों से उमड़ता हुआ समुद्र मालवीय जी का ह्रदय था। वे सच्चे अर्थो में संत थे।

### 2.2.1 स्वयं के लिए दान नहीं

मारि जाऊँ माँगू नहीं, अपने हित के काज।
परमारथ के कारने मोहि न आवे लाज।।

मालवीय जी के पिता पं0 ब्रजनाथ जी संस्कृत के विद्वान, लोकशास्त्रीय संगीतज्ञ और श्रीमद्भागवत के सुप्रसिद्ध कथावाचक थे। सदाचार युक्त जीवन–यापन, शास्त्रों का अध्ययन, श्री राधे कृष्ण की आराधना और कथा–प्रवचन, यही उनकी साधना और यही उनके व्यसन थे। वे किसी से कोई दान नहीं लेते थे। कथा पर भगवदिच्छा से जो कुछ चढ़ जाता, उसे ठाकुर जी का प्रसाद मानकर स्वीकार कर लेते थे। इस सीमित आय से ही परिवार का किसी प्रकार गुजारा होता था। माता–पिता के इन सद्गुणों तथा उनकी विपन्न आर्थिक स्थिति का बालक मदन मोहन के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

महामना पं0 मालवीय जी व्यक्गित उपयोग के लिए किसी से न तो दान लेते थे और न भिक्षा। याचना से प्राप्त धन भिक्षा है और अयाचित प्राप्त धन दान। एक विशुद्ध सात्विक ब्राह्मण होने के कारण वे इस आदर्श का निष्ठा से पालन करते थे। उन्होंने कुछ खास लोगों के पास एकत्रित धन को दान–स्वरूप लेकर सार्वजनिक कार्यों में लगा दिया। यह स्वयं में एक महान लोकतांत्रिक कार्य है। वे जितने बड़े भिक्षुक थे, उससे बड़े दानी।

### 2.2.2 प्रयाग सेवा समिति

सन् 1912 में अर्द्ध कुम्भ के अवसर पर मालवीय जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पं0 रमाकान्त जी को यात्रियों की सेवा के लिए एक (स्वयं सेवक–दल) गठित करने के लिए प्रोत्साहित किया। सन् 1914 में उसका नाम 'दीन रक्षक समिति' पड़ा। सन् 1915 में मालवीय जी



की अध्यक्षता में यह 'प्रयाग सेवा समिति' के रूप में गठित हुआ। महामना ने इस समिति का आदर्श वाक्य, 'महाभारत' में बतायी गई शिवि की निम्नलिखित प्रार्थना को बनाया।

"न त्वहंक कामये राज्यं न स्वर्ग ना पुनर्भयम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणि नामिर्ति नाशनम्।।"

सन् 1918 में समिति को अखिल भारतीय संस्था का रूप दिया गया। इसकी अनेक शाखाएँ विभिन्न प्रान्तों में खुली। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य बाढ़, अकाल, भूकम्प, आगजनी, महामारी आदि आपदाओं से घिरे लोगों की रक्षा एवं सहायता करना, तीर्थ स्थानों में तीर्थ यात्रियों को सुख–सुविधा पहुँचाना आदि था। इस सेवा–समिति में सम्मिलित होकर गाँधी जी ने भी सन् 1915 में हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर यात्रियों की सेवा की थी।

सन् 1918 में प्रयाग के अवसर पर प्रयाग के गंगा तट पर सफाई का काम करने वाले 2000 (दो हजार) भंगियों को इकट्ठा करके मालवीय जी ने उन्हें सम्मिलित भोजन कराया, उनमें कपड़े बाँटे तथा प्रहलाद की कथा सुनायी। इस समय तक महात्मा गाँधी ने अपना अस्पृश्यता–आन्दोलन आरम्भ नहीं किया था। महामना के दिल में यह भाव काम कर रहा था कि जिन भंगियों ने कुम्भ मेला की यात्रियों की सेवा की है, उनका सत्कार करना हमारा पुनीत कर्तव्य है। पं0 मालवीय जी छुआछूत को नहीं मानते थे, किन्तु पवित्रता एवं स्वच्छता के आग्रही अवश्य थे।

पं0 मालवीय जी ने सन् 1918 में कुम्भ के अवसर पर यात्रियों की सेवा के लिए श्री राम वाजपेयी (शाहजहाँपुर) के 'ब्याय स्काउट' के साथ अपनी 'सेवा समिति' को सम्बद्ध कर अखिल भारतीय ब्याय स्काउट की स्थापना की थी। आप उसके चीफ स्काउट थे और पं0 हृदयनाथ कुँजरू उसके कमिश्नर।

### 2.2.3 सनातन धर्म महासभा

सनातन धर्म महासभा पं0 मालवीय जी के धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों का प्रमुख मंच था। हिन्दू समाज की उन्नति के लिए इस संस्था ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इस संस्था के वे संस्थापक थे, अतः इसकी उन्नति की उनमें व्यक्तिगत एवं स्वाभाविक चिन्ता अधिक थी। जिसके लिए निरन्तर दौरे पर रहना पड़ता था।

समय चक्र में भारत की महान संस्कृति और जाति सुस्थिर नहीं रह सकी, अनेक कारणों से इसका वास्तविक रूप विकृत एवं विद्रूप हुआ। वर्ण व्यवस्था का आधार, जो गुण एवं कर्म था, जन्म हो चला। अपने–अपने कर्मों के प्रति उदासीनता के कारण अलगाववादी एवं अस्थिरवादी प्रवृत्तियों को पनपने का अवसर मिला, सामाजिक संगठन चरमराने लगे। पारस्परिक सद्भाव की जगह द्वेष, सामूहिकता की जगह वैयक्तिकता, त्याग की जगह स्वार्थ की प्रवृत्ति घुसती गयी, हमारे समाज का सम्पूर्ण ढाँचा ही नवीन रूप धारण करते गया। नये–नये रीति–रिवाज चल पड़े, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का जाल सा बिछ गया। ब्राह्मणों की तेजस्विता लुप्त हो चली, क्षत्रिय अपने क्षात्र–धर्म से विमुख हुए, वैश्यों ने देशहित का ध्यान न रखकर व्यक्तिगत स्वार्थ को बढ़ाया और समाज के इन ऊपरी तीन वर्णों की अपनी–अपनी उत्तरदायित्वहीनता के कारण शूद्रों का आस्तित्व खतरे में पड़ गया, अनवरत शोषण के चलते उनमें घोर मंथरवाद आया।

पंडा पुरोहितों, महंतों एवं रूढ़िवादी ब्राह्मणों का अलग आतंक था। धर्म के नाम पर अनपढ़ एवं गरीब लोगों के धर्म, धन को स्वतन्त्र लूट, व्याभिचार, अनाचार, शोषण, पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, भूत–प्रेत, भाग्य–वाद, बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, गो–हत्या आदि कुछ ऐसे आन्तरिक एवं बाह्य कारण थे, जिनके कारण हिन्दुत्व और हिन्दु समाज के मौलिक स्वरूप को गहरा धक्का लगा।



पं0 मालवीय जी ने अनुभव किया कि धर्म और शिक्षा के बिना हमारा समाज एवं राष्ट्र संगठित, शक्तिशाली, स्वतन्त्र एवं समृद्ध नहीं हो सकता। हिन्दू समाज का सदियों से उपेक्षित वर्ण, जिसे अछूत कहकर पुकारा जाता रहा, के आर्थिक, शारीरिक एवं बौद्धिक उत्थान तथा उनको पुनः हिन्दू समाज में प्रतिष्ठित होने का अवसर मिलना चाहिए, अंधविश्वास एवं रूढ़ियों को दूर कर लोगों में कर्म के प्रति आस्था जगानी चाहिए।

शास्त्रों पर अगाध श्रृद्धा रखने वाले पं0 मालवीय जी ने कहीं–कहीं कुछ शास्त्रों की मौलिकता पर प्रश्न–चिन्ह भी खड़ा किया है। उन्होंने 'अभ्युदय' में लिखा–

> "शास्त्र–विहित बातों (विधियों) का अंधवत् अनुकरण करना निःसंदेह हानिकारक हैं। हमारे नित्य–कर्म में कई ऐसी प्रथाओं का समावेश हो गया है, जो किसी प्रकार शास्त्र विहित नहीं है। **(अभ्युदय, 2 मई 1908)**

पं0 मालवीय जी ने अपने 'अन्तयोद्धार विधि' नामक लगभग 100 पृष्ठ के गन्वेषणात्मक लेख में सैकड़ों ग्रन्थों के प्रमाणों को उद्धृत करते हुए यह सिद्ध किया है कि शूद्रों एवं अन्तयजों को भी (कुछ एक बातों को छोड़कर) उन सब सुविधाओं को पाने का अधिकार है, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्व को प्राप्त हैं उन्होंने लिखा है – "जिस प्रकार रस के विधान से कांसा कंचन हो जाता है, उसी प्रकार दीक्षा द्वारा मनुष्य द्विजत्व (श्रेष्ठता) को प्राप्त कर लेते हैं।"

जो शूद्र मन और इन्द्रियों को रोकने में सत्य में, धर्म में सदा लगा रहता है, उसको मैं ब्राह्मण मानता हूँ, ब्राह्मण चरित्र से ही होता है। मनुष्य पुण्यकर्मों के करने से वर्ण में ऊपर उठ जाता है और नीच कर्म करने से नीचे गिर जाता है। शील–सम्पन्न, गुणवान शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है और क्रियाहीन ब्राह्मण भी शूद्र से नीचे गिर जाता है।

इस तरह के अनेक उद्धरण देते हुए महामना ने कहा है, – "यदि ऊपर लिखे विचार शास्त्र के अनुकूल है, तो इन्हीं के अनुसार अछूतों की आर्थिक दशा सुधारकर, सदाचार सिखाकर, उनकी मंत्र–दीक्षा देकर उनका उद्धार करना हमारा धर्म है।

### 2.2.4 साम्प्रदायिक एकता

साम्प्रदायिक एकता के तहत मालवीय जी ने सिर्फ हिन्दू–मुसलमानों को परस्पर जोड़ने का काम किया, बल्कि विभिन्न धर्मावम्बी हिन्दू शाखाओं को भी संगठित करने का प्रयास किया। 1923 के काशी 'हिन्दू महासभा' अधिवेशन में अध्यक्ष पद से उन्होंने कहा था कि बौद्ध, जैन और सिक्ख आदि वृहद् हिन्दू जाति के अंग हैं। इसके लिए उन्होंने संस्कृत का एक श्लोक उद्धृत किया –

यं शैवा! स्मुपासते शिव इति ब्रह्मोति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।।
अर्हन्नित्यय जैन शासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं नो विदधातु वाच्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

अर्थात् "जिसको शैव लोग 'शिव' कहकर पूजते हैं, वेदान्ती लोग 'ब्रहम' कहकर बौद्ध लोग 'बुद्ध' कहकर, नैयायिक 'कर्त्ता' कहकर जैन 'अर्हतं' कहकर और मीमांसक लोग 'कर्म' कहकर पूजते हैं, वह तीनों लोकों का स्वामी आपका मंगल करे।"

महामना कर्म एवं उद्देश्य की महत्ता को स्वीकार करते थे, चाहे वह किसी के द्वारा सम्पन्न हो। अगर कर्म एवं उद्देश्य ऊँचा है, तो उसे सम्पादित करने वाला व्यक्ति भी उनकी दृष्टि में ऊँचा होता था और उसे वे सम्मान एवं आदर देने से नहीं चूकते थे।

### 2.2.5 स्त्री शिक्षा

स्त्रियों के प्रति मालवीय जी का विशेष ध्यान था। वे चाहते थे कि स्त्रियाँ बिना पर्दा के चलें, घर से बाहर निकलें और पुरूषों के



कार्य में हाथ बटावें। वे मानते थे कि 'भारतीय स्त्री' पुरूषों के हाथ का खिलौना नहीं, अपितु वह स्वावलंबी तथा अपनी रक्षा स्वयं करने वाली है। उनके अनुसार आदर्श नारी सिर्फ घर की शोभा नहीं, कर्म तथा क्षेत्र में भी स्वावलंबी है।˙ इस तरह मालवीय जी पर्दा प्रथा के विरोधी तथा स्त्रियों के छात्र धर्म के हिमायती थे।

मालवीय जी छात्राओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और चरित्र गठन पर पढ़ाई से अधिक बल देते थे। वह कहते थे,– "वही तो स्त्री शिक्षा का पावन स्रोत है। स्रोत कलुषित होने से शिक्षा विकृत होकर हानि पहुँचाती है। सन् 1904 में मालवीय जी ने स्व0 बालकृष्ण भट्ट और बाबू पुरूषोत्तम दास जी टण्डन के सहयोग से प्रयाग में गौरी पाठशाला की स्थापना की और आजकल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हो गया है और जिसमें लगभग 1000 से अधिक लड़कियाँ पढ़ती हैं। 16 मार्च 1911 को गोखले ने कौंसिल में प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक पेश किया। इसी विधेयक का समर्थन करते हुए मालवीय जी ने कहा था, –

> "समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति तथा उस जीवन से, जो ज्ञान द्वारा संभव है, वंचित रखना बहुत दुःखदायी बात होगी।"

उनका कहना था कि "जो सिद्धान्त लड़कों के लिए ठीक समझा जाता है, उसे उचित संरक्षण के साथ अभिभावकों की राय से लड़कियों पर भी लागू किया जाना चाहिए। वे चाहते थे कि

> "जातीय जीवन में पुनरूत्थान के लिए स्त्री शिक्षा के पवित्र कार्य को उत्साह के साथ किया जाये। स्त्रियों के हृदय और मन की सारी शक्तियों का सम्यक रूप से विकास किया जाये, उनकी पूर्ण पुष्टि की जाये। उनके विचार में पुरूषों की तरह स्त्रियों को भी देशहित का कार्य करना चाहिए।"

वे स्त्रियों को भारत के भविष्य का आधार मानते थे और कहते थे कि हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्व ज्ञानियों व्यापार तथा कला

कौशल के नेताओं की वह प्रथम शिक्षिका है, अतः उसके व्यक्तित्व का सम्यक विकास नितान्त आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध सन् 1962–23 से ही शुरू करा दी और बहुत शुरू से ही सही–शिक्षा का प्रबन्ध आरम्भ हो गया।

### 2.2.6 स्वदेशी

पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने अन्य शासन प्रणालियों की तुलना में प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र को ही श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इस प्रणाली में जनता के हितों, आकाँक्षाओं और आशाओं का बेहतर प्रतिनिधित्व होता है। अपने विभिन्न लेखों और भाषणों में मालवीय जी ने प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र की सफलता हेतु स्वतन्त्रता, समानता, एकत्व और बन्धुत्व, अवसरों की समानता, विचार, अभिव्यक्ति के अवसरों की प्राप्ति, प्रेस की स्वतन्त्रता, समाज के कमजोर वर्गों और महिलाओं की सुरक्षा की आवश्यकता पर बल दिया।

भारत में प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र की स्थापना की माँग के साथ ही पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने स्वदेशी और स्वराज्य को देश के लिए अत्यन्त आवश्यक बताया और समस्त देश वासियों से मन, वचन और कर्म से स्वदेशी के प्रति समर्पित होने तथा देश की आर्थिक समृद्धि के लिए भारत निर्मित वस्तुओं के प्रयोग हेतु आह्यान किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि स्वदेशी का प्रयोग ही स्वराज्य की प्राप्ति में सहायक होगा। 23 दिसम्बर 1907 को सूरत कांफ्रेन्स की बैठक में स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा कि, "देश के उत्थान और जनता कि समृद्धि में जितने आवश्यक प्रश्न वर्तमान हैं उनमें स्वदेशी आन्दोलन का प्रश्न सबसे अधिक महत्व रखता है। देश भक्ति के लिए इसकी जरूरत है, मानवता का यह धर्म बतलाया गया है ... आजीवन इस व्रत का पालन करना धर्म है। उन्होंने भारतवासियों से अपील करते हुए आगे कहा–



> "इसे मानव जाति के प्रति अपना कर्तव्य और देश के प्रति अपना धर्म मानकर आपको सब तरह से जीवन भर के लिए पूरा स्वदेशी होना चाहिए। ऐसा अन्य कोई भी देश नहीं है, जहाँ पर मातृभूमि की सेवा करने का इतना विस्तृत क्षेत्र हो, जितना कि इस अभागे देश में है मेरे बुद्धि में अन्य कोई देश ऐसा नहीं मिलेगा जहाँ भारत की दरिद्र जनता के अतिरिक्त मानव जाति की अधिक सेवा की जा सके। **(-Pt. Santram Chaturved (Ed.) Mahamana Pt. Madan Mohan Malviya, Vol.-18. Kashi Paursh Krishnashtami, 1973, V.S. PP. 319-320)**

## 2.3 राजनैतिक दर्शन

आज सम्पूर्ण विश्व 'प्रजातन्त्र' को सफल बनाने की तकनीकों पर विचार कर रहा है। यह स्पष्ट हो चुका है कि जहाँ प्रजातन्त्र की जड़ें नैतिकता में नहीं होती हैं, वहाँ प्रजातन्त्र के तीनों आदर्श, 'स्वतन्त्रता, समानता एवं मातृत्व' नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि वर्तमान राजनीति में स्वतन्त्रता मानव शक्तियों के विकास का साधन न होकर पूँजी, शक्ति और यश को संचित करने का माध्यम बनकर रह गयी है। समानता उपेक्षित, दलित एवम् हाशिये पर खड़े हुए लोगों के उत्थान का साधन न होकर धनी व्यक्तियों के मध्य प्रतिद्वन्दिता का उपादान बनकर रह गयी हैं। अब मातृत्व मतभेदों की रचनात्मकता के आधार पर एक स्वस्थ सह अस्तित्व समाज की परिकल्पना का आधार न होकर व्यक्तिगत अहम् संकुचित स्वार्थ एवं घृणित स्पर्धा का अखाड़ा बन कर रह गयी है। इस सघन अंधेरे में मालवीय जी की 'अन्तः चेतना की राजनीति' उस मूसलाधार की ओर इंगित करती है जिसमें अवस्थित होकर ही प्रजातन्त्र अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। मालवीय जी के राजनीतिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण राष्ट्रपति डॉ0 शंकर दयाल शर्मा जी ने कहा, –

"मुझे स्वतन्त्रता–आन्दोलन में उनका योगदान दो मुख्य रूपों में दिखायी पड़ता है, एक स्वतन्त्रता–सेनानी के रूप में तथा दूसरा बुद्धिजीवी के रूप में। मालवीय जी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का चार बार अध्यक्ष चुने जाने का गौरव प्राप्त है। इस रूप में उन्होंने संगठन और नेतृत्व करने की क्षमता का परिचय दिया। वे कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे। स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में उन्होंने विभिन्न आन्दोलनों में भाग लिया और जेल गये, बुद्धि जीवी के रूप में उन्होंने 'हिन्दुस्तान', अभयुदय', 'मर्यादा', 'किसान और लीडर', आदि अनेक समाचार पत्रों का सम्पादन किया। पत्रों में उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से लोगों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना जागृत की।"

### 2.3.1 देश प्रेम और स्वराज्य

मालवीय जी स्वतन्त्रता और संवैधानिक कार्य प्रणाली में विश्वास रखते थे। स्वाधीनता के क्षेत्र में कांग्रेस को अग्रसर करने वाले मालवीय जी ने प्रतिनिधित्व की माँग की थी। मालवीय जी देश भक्ति को स्वराज्य का पहला कदम मानते थे। वे यह मानकर चलते थे कि देश भक्ति ही स्वराज्य सिद्धि का प्रमुख साधन है इसके लिए जहाँ तक सम्भव हो सका देश के प्रत्येक प्राणी में देश भक्ती की भावना बढ़ाने का प्रयास करते रहे। इसी संदर्भ में उन्होंने सन् 1929 में दीक्षान्त भाषण में कहा था कि :–

''विश्वविद्यालय के स्नातकों को चाहिए कि वे देश प्रेम और शोषित भारतीयों से प्रेम करें और उनमें एकता और शिक्षा का प्रसार करें। उन्होंने कहा आप स्वतन्त्रता चाहते हैं, अपने देश में स्वशासन चाहते हैं तो इसके लिए जो त्याग आपसे अपेक्षित हो, उसके लिए तैयार रहिए। आप अपने में स्वातन्त्रय, प्रेम और मातृभूमि के गौरव के लिए त्याग की भावना पुष्ट करें। मालवीय जी स्वराज्य के जन्म सिद्ध अधिकार को आत्म निर्णय के सिद्ध



ान्त से विभूषित करते थे। इस प्रकार वे भारत को किसी बाहरी दबाव के बिना स्वशासन दिलाने में विश्वास करते थे।

### 2.3.2 असहयोग आन्दोलन

असहयोग आन्दोलन के अनेक प्रस्तावों पर गाँधी जी तथा मालवीय जी में मतभेद था। गाँधी जी आन्दोलन चलाना चाहते थे। परन्तु मालवीय जी वाइसराय से मिलकर स्वशासन की माँग पर बल देने पर विचार कर रहे थे। अन्ततः महात्मा गाँधी की इच्छानुसार कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में असहयोग–प्रस्ताव की घोषणा की गयी, जिसमें सरकारी विद्यालयों, कार्यालयों का बहिष्कार, मद्यनिषेध, विदेशी सामान का बहिश्कार, छुआछूत की समाप्ति और हिन्दू–मुस्लिम एकता को बनाये रखने के प्रमुख कार्यक्रम थे। अस्वस्थ होने के कारण मालवीय जी अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सके, परन्तु उन्होंने यह संदेश भेज दिया कि उन्हें यह प्रस्ताव मंजूर नहीं है। मालवीय जी ने यद्यपि असहयोग के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया तथापि बाद में गाँधी जी के कहने पर प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिए। वे चाहते थे कि विद्यार्थी विद्यालयों का बहिष्कार न कर विद्यालय में रहकर देश की सेवा करें। यद्यपि उन्हें आन्दोलन की कुछ बातें निरर्थक लगती थीं तथापि वे समय–समय पर आन्दोलन का समर्थन ही करते थे।

### 2.3.3 राष्ट्रीयता एकता और साम्प्रदायिक सौहार्द

मालवीय जी राजनीतिक एकता और साम्प्रदायिक सौहार्द में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार दूसरों का भी अपने साथ अभ्युदय हो, यही श्लाधनीय राजनीति है उन्होंने अपने प्रतिद्वन्दी राजनीतिज्ञों को कभी नीचा दिखाने का प्रयास नहीं किया। कांग्रेस की राजनीति में अनेक ऐसे अवसर आये जब मालवीय जी ने राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। हण्टर कमेटी के समक्ष गवाही देने के मामले में कांग्रेस

का निर्णय जब मालवीय जी के पक्ष में होता तब गाँधी जी खिन्न होकर चले जाने की घोषणा करते। मालवीय जी तुरन्त कांग्रेस की बैठक में गाँधी जी के पक्ष में निर्णय करा देते। स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा है – "निःस्वार्थपन और प्रजातान्त्रिक भावना का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण था।"

ब्रिटिश सरकार की फूट डालो और शासन करो की नीति के परिणाम स्वरूप सन् 1906 में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। परन्तु मालवीय जी ने सदा हिन्दू–मुसलमानों को समान देखा। उन्हीं के प्रयासों से सन् 1916 में कांग्रेस–मुस्लिम लीग समझौता हुआ। सन् 1918 के दिल्ली अधिवेशन में उन्होंने कहा था कि हिन्दू–मुस्लिम एकता के बिना स्वशासन प्राप्त करना सम्भव नहीं है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संकुचित साम्प्रदायिकता को आश्रय नहीं दिया जायेगा। सन् 1934 में कांग्रेस की ओर से उन्होंने साम्प्रदायिक निर्णय विरोधी प्रस्ताव पास कराया था। वे सदा हिन्दू–मुस्लिम एकता को बढ़ाने में विश्वास रखते थे।

### 2.3.4 संघवाद और प्रान्तीय स्वायत्ता

पंडित मदन मोहन मालवीय जी एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष के दौरान ही उन्होंने भारतीय समाज व संस्कृति की विभिन्नताओं के अनुरूप एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना का समर्थन किया था जहाँ शक्तियाँ केन्द्र और प्रान्तों के बीच विभाजित हों और प्रत्येक प्रान्त को प्रान्तीय स्वायत्ता मिली हुई हो। उन्हें इस बात का विश्वास था कि केवल संघवादी व्यवस्था ही देश में प्रत्येक जाति, धर्म, भाषा व प्रान्त का पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सकती है। सन् 1908 में नियुक्त प्रान्त की विधान कौंसिल के सदस्य की हैसियत से मालवीय जी ने विकेन्द्रीकरण कमीशन के सामने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा, –



> "प्रान्तीय सरकारें भारत सरकार की केवल प्रतिनिधि मात्र हैं। उन्हें अपने आर्थिक और अन्य सभी प्रश्नों की स्वीकृत भारत सरकार से लेनी पड़ती है। प्रान्तों की सारी व्यवस्था भारत सरकार के कठोर नियन्त्रण में है बिना स्वीकृति के प्रान्तीय सरकारें कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकती।"

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मालवीय जी ने देश के लिए एक शक्तिशाली संघ की स्थापना के साथ–साथ प्रान्तीय स्वायत्ता का भी जोरदार समर्थन किया। जो आगे चलकर भारतीय संविधान की एक आवश्यक विशेषता बना। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने भारत के लिए भावी संघवाद पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि युनाइटेड भारत में संघीय ईकाइयों के पास इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि वे अपने मामले में स्वयं निर्णय लें। उन्हीं के शब्दों में,–

> "For the defence of motherland and for the program of the entire people who live in that land were the people of the states would combine allegiance to the rulers of their own states with fidelity to our comman motherland."

मालवीय जी के दर्शन का विस्तृत अध्ययन करते हुए शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि उपर्युक्त वर्णित विचारों के अतिरिक्त उनके राजनीतिक चिंतन के अन्य पक्षों में मानवतावाद उनका संविधानवाद, स्थानीय स्वशासन की अवधारणा, अहिंसा मूलक राज्य की स्थापना, राजनीति का आध्यात्मीकरण इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए संवैधानिक माध्यमों का समर्थन किया। वे अहिंसात्मक साधनों पर चलते हुए सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह को भी संवैधानिक स्वीकार करते थे और आवश्यकता पड़ने पर इनके उपयोग को उचित समझते थे। महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ

टैगोर, स्वामी विवेकानन्द की भाँति वे भारतीय राजनीतिक दर्शन की उस परम्परा की प्रमुख कड़ी थे। जहाँ धर्म से पृथक राजनीति की कोई कल्पना ही नहीं है, वे आजीवन संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र की उपलब्धि के लिए संघर्ष करते रहे। देश के सम्यक प्रकार के अभ्युदय व नवजीवन के निर्माण के प्रयासों में उनका योगदान निश्चय ही अतुलनीय है । गाँधी जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि, —

> "देश सेवा ही मालवीय जी का भोजन है। वे इसे कभी नहीं छोड़ सकते। जिस तरह भगवद्गीता का नित्य पाठ छोड़ना असंभव है, उसी तरह देश सेवा भी उनके जीवन में सांस की तरह ओत—प्रोत है। इसलिए जब तक उनकी सांस है, तब तक देश सेवा होती रहेगी। कौन जानता है कि वे इसे स्वर्ग में भी साथ ले जायें।"

## 2.4 शैक्षिक दर्शन

सेवा, सामाजिक अभ्युत्थान, सामाजिक समानता के ये सिद्धान्त जो मालवीय जी के मस्तिष्क में सशक्त रूप से उभर रहे थे। वास्तव में स्वतन्त्रता संग्राम की बुनियाद में भी प्रबल रूप से कार्यरत थे। भारत को स्वतन्त्र कराने के साथ ही आप इस देश को एक भविष्योन्मुखी संरचना देना चाहते थे। इस कर्मकाण्ड की राह पर मालवीय जी को दो अति कठिन प्रतिगामी तत्व मिले थे निरक्षरता तथ अंग्रेजी शासन द्वारा स्थापित नकारात्मक शिक्षा प्रणाली। दोनों ही भारतीय अस्मिता को शनैः—शनैः नष्ट कर रहे थे। पहचान के इस संकट काल में शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार तथा मानव निर्माणकारी शिक्षा के कार्यान्वयन को ही मालवीय जी सामाजिक सुधार का श्रेष्ठ जरिया मानते थे।

उपर्युक्त सारी परिस्थितियों पर गौर करते हुए, युगचिंतक पं0 मालवीय जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमारी सारी समस्याओं की जड़ (अज्ञानता) ही है। किसी भी समय एवं समुन्नत समाज की बुनियाद उसकी शिक्षा है । इसके अभाव में विवेकहीनता तथा विनाश की स्थिति उत्पन्न होगी।



भारत में शिक्षा पर अधिक ध्यान न दिया जाना अंग्रेजों की कुटिल नीति का एक अनिवार्य अंग था। मालवीय जी का मानना था कि बिना शिक्षा तथा उचित धर्म के प्रचार—प्रसार के देश की न तो भौतिक उन्नति हो सकती है और न नैतिक। देश को भीषण दरिद्रता से मुक्त कराने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा का व्यापक प्रसार आवश्यक मानते थे ताकि कृषि और औद्योगिक क्रान्ति द्वारा देश के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन एवं उपयोग कर भौतिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ जा सके। राष्ट्र की महत्ता—इसकी भौतिक समृद्धि, सड़कों तथा रेलों के विस्तार में ही नहीं, बल्कि उन मानवों के मधुर मुस्कान में है, जो इस समृद्धि का द्वार खोलते हैं। स्पष्टतः देश के उत्थान के लिए जितनी भौतिक उन्नति आवश्यक है, उससे अधिक नैतिक विकास की आवश्यकता है। मालवीय जी पाश्चात्य जीवन पद्धति पर आधारित और सरकार द्वारा नियन्त्रित शिक्षा पद्धति के दोषों से पूर्ण परिचित थे। देश के नव युवकों को जीविका के लोभ और राष्ट्रीय दृष्टि से नैतिक पतन से बचाने के लिए स्वतन्त्र रूप से संचालित राष्ट्रीय शिक्षा को वे आवश्यक समझते थे। उनके समक्ष एक बहुत बड़ा मौलिक प्रश्न था कि विद्या या शिक्षा का उद्देश्य क्या हो ? उपनिषदों के अनुसार विद्या वह है, जो मुक्ति के लिए हो— 'सा विद्या या विमुक्तये', हर तरह से मुक्ति— आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक अर्थात् संकीर्णताओं तथा स्वार्थपरता की जगह त्याग एवं समर्पण की भावना का विकास।

### 2.4.1 शिक्षा से दलितोद्धार

"दलित वर्गो के उत्थान का प्रश्न शिक्षा पर निर्भर है। उन वर्गो में शिक्षा के प्रसार के लिए सरकार जो कुछ कर सकती है,

उसे वह करें। सरकार और समाज के स्कूल दलितों वर्गों के लिए उतने ही खुले हों, जितने दूसरे बच्चों के लिए। विद्या के बिना किसी देश या जाति की उन्नति असम्भव है। अन्त्यजों में जो कुछ भी त्रुटि समझी जाती है, उसका सबसे प्रबल कारण उनमें विद्या प्रचार की कमी है।

### 2.4.2 नौकरियों में आरक्षण नहीं

"खुली परीक्षा द्वारा ही सभी वर्गों और सम्प्रदायों के नवयुवक योग्यता के आधार पर निष्पक्ष भाव से सरकारी नौकरी में भर्ती किये जायें। सब वर्ग और सम्प्रदाय शिक्षा तथा सरकारी नौकरी के लिए सम्मान अवसरों की माँग करने के हकदार हैं। सरकारी नौकरी सारे समाज की सेवा के लिए हैं, न कि किसी सम्प्रदाय (या समुदाय) की सेवा के लिए। जनहित की माँग की उत्तरदायित्व और अधिकार के पदों पर वही व्यक्ति नियुक्त किये जायें, जो जन सेवा के लिए अपेक्षित क्षमता के मानदण्ड पर पहुँच चुके हैं।"

### 2.4.3 अर्थकारी शिक्षा

शिक्षा के वास्तविक अर्थ व महत्व को स्पष्ट करते हुये मालवीय जी कहते हैं कि–

> "निर्धनता और बेरोजगारी का प्रश्न जटिल होता जा रहा है। यदि हमारे नवयुवकों को व्यवसायिक तथा व्यवहारिक विज्ञान की शिक्षा अनेक रूप से दी जाये, तो यह समस्या बहुत अंश में हल हो जायेगी, जिससे वे बड़ी तनख्वाह वाली नौकरियों की मृगतृष्णा अथवा पहले से ही ठसाठस भरे हुए पेशों की ओर न झुकें। इस प्रकार हम धीरे–धीरे विदेशी वस्तुओं के आयात को बहुत अंश में कम कर सकेंगे तथा देश से बाहर जाने वाले अपने कच्चे माल को भी रोक सकेंगे।"



### 2.4.4 वैज्ञानिक शिक्षा का देशीकरण

मालवीय जी के अनुसार,– "भारतवर्ष अपनी खोई समृद्धि को तब तक पुनः नहीं प्राप्त कर सकता, जब तक आधुनिक अध्ययन का देशीकरण नहीं हो जाता है। जब तक विदेशी भाषा के माध्यम से इसकी शिक्षा चलती रहेगी, तब तक वह राष्ट्रीय स्वामित्व का अर्थ गौरव प्राप्त नहीं कर सकता। निर्धनता से मुक्ति के एक साधन के रूप में भारत में विज्ञान का सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक स्तर पर व्यापक फैलाव तब तक असंभव है, जब तक स्वदेश में देशी भाषा के माध्यम से देश वासियों के लिए उसकी शिक्षा–व्यवस्था नहीं हो जाती।"

### 2.4.5 छात्र और राजनीति

मालवीय जी के अनुसार– "मैं सदा इस बात के विरूद्ध रहा हूँ कि विद्यार्थीगण राजनीति में भाग लें, पर तो भी मैं इसे नितान्त हानिकारक तथा आगे के लिए भयानक समझता हूँ कि वे राजनीति से अनिभिज्ञ रखे जायें तथा जाति के आदर्श और बड़े पुरूषों के विचारों और कार्यों से अनजान बने रहे। यह स्थिति उस दशा में और भी घृणित प्रतीत होती है, जब सरकार की ओर से ऐसी रूकावटें डाली जाती है।

### 2.4.6 महामना का आर्शीवाद-सफलता व सुरक्षा का मूल मंत्र

महामना जी का एक ही श्लोक सम्पूर्ण विश्व के नवयुवकों के लिए पर्याप्त है। उनका यह आशीर्वादात्मक श्लोक उनके जीवन के कार्य का परिणाम स्वरूप है। इस यंत्र–मंत्र तंत्रात्मक कवच को पहनने वाले नवयुवक, कभी भी जीवन पथ की पगडण्डी से फिसलते नहीं। यही वह महामना का आशीर्वाद है –

> "सत्येन ब्रह्मचर्य्यैण व्यायामेनाऽथ विद्ययज्ञं
> देश भक्त्याऽऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भाव।।

सत्य सर्वा पेक्षया श्रेष्ठ हं बिना सत्य के ब्रह्मचार्य का पालन सम्भव नहीं। सत्य बोलने वाला कभी अब्रह्मचारी नहीं हो सकता। अब्रह्मचारी व्यायाम करेगा तो बलहीन होगा। बलहीन होकर व्यायाम करेगा तो 'अयथा बल मारम्भे निदानं क्षय सकम्पदः' शरीर का क्षय होने लगेगा। शरीर का क्षय होगा तो विद्याध्ययन तथा अन्य कलाकौशल कैसे सम्भव हो सकता सत्य है ? विद्या ही नहीं तो देश–भक्ति होना दुर्लभ है जिसके हृदय में देश भक्ति न होगी वह आत्म त्याग नहीं कर सकता है, आत्म त्याग नहीं करेगा तो विश्व में विख्यात नहीं हो सकता। अमूल्य जन्म पाकर पानी के बुलबुलों की तरह विलीन हो गये तो अभयत! मृत्यु ही है। पार्थिव शरीर से लोकहित न हो सका। लोकहित हुए बिना यशः संचय कैसे यश के अभाव में यशः कार्य असम्भव है अतः निशचित ही जिन्होंने दुर्लभ मानव तन पाकर भी प्रत्येक के जीवन में एक बार अवश्य आने वाले अवसर की चोटी पकड़कर विश्व के सम्मुख अपना कर्तव्य पालन न किया, उन्होंने कुछ नहीं किया। महामना के आर्शीवाद का एक–एक शब्द सूत्र है। उसकी व्याख्या करने पर एक महान ग्रन्थ बन सकता है।

## तृतीय अध्याय

# मालवीय जी का शैक्षिक दर्शन

### 3.0 भूमिका

महामना मालवीय जी आधुनिक भारत के निर्माताओं में प्रमुख थे, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता राजनीति तक सीमित नहीं थी। वे राष्ट्र और राज्य को जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्राप्ति का माध्यम मानते थे और उनका यह भी विश्वास था कि उन मूल्यों की उपलब्धि के बिना राष्ट्र अथवा राज्य भी शीलवान् और स्थायी नहीं हो सकता। धर्म, समाज, संस्कृति और स्थायी को वे जीवन का आधार मानते थे। वे समझते थे कि इनके उत्थान के बिना राष्ट्र का उत्थान असंभव और अर्थहीन है।

मालवीय जी का कहना ये था शिक्षा अभयुदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए है– "यथा अभ्युदय निःश्रेयस स धर्मः" और इसमें उन्होंने फिर उस वक्त एक कथन उद्धृत किया। अपने इशोपनिषद से –

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूय इव ते तमो, य उ विद्यायांरताः।।

इसी भावना को साथ में रखते हुए महामना ने अपना शैक्षिक दर्शन प्रस्तुत किया।

शिक्षा का स्वरूप क्या हो ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न था, पं0 मालवीय जी के समक्ष भारतीय परम्परा में ज्ञान के दो प्रकार रहे हैं – विद्या और अविद्या, जिसे आध्यात्मिक और भौतिक भी कहा गया

मानव–जीवन की पूर्णता और मुक्ति के लिए इन दोनों प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है। इसके परस्पर विरोध में नहीं, बल्कि परस्पर समन्वय में ही हमारे देश का संतुलित विकास संभव है। वे दोनों ज्ञान एक दूसरे के पूरक एवं सहायक हैं।

ताकि व्यक्ति जहाँ एक ओर भौतिक विज्ञान के माध्यम से व्यवसायिक कुशलता अर्जित कर जीवन स्तर को समुन्नत कर सके, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतना से जीवन की गुणवत्ता को उर्ध्वगामी करते हुए स्थायी शांति व प्रशांति के पथ पर अग्रसर हो। डॉ0 राधाकृष्णन ने कहा है, –

> "पण्डित मालवीय जी 5000 वर्ष अतीत भारत का अनुकरण करना नहीं चाहते, वे युग की धारा से पूरी तरह जुड़े हैं। युग के प्रगतिशील धड़कन और विज्ञान के संदेश से देशवासियों को समृद्धकर उसे मानव–सेवा के लिए प्रेरित करना चाहते हैं। वे अपने–अतीत के मूल्यवान ज्ञान–संपदा को सुरक्षित करते हुए युग के साथ चलाना चाहते हैं। वे देश में हिन्दुत्व–जागरण के उत्तरदायी हैं और हिन्दुत्व के आदर्शों को देश की भौतिक उन्नति के लिए देशवासियों में प्रक्षेपित करना चाहते हैं। यह बहुत बड़ा संदेश तथा दृष्टिकोण है, जिसे हम पं0 मालवीय जी के जीवन से प्राप्त कर सकते हैं।1 वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि इतिहास चक्र को उल्टा नहीं घुमाया जा सकता। अतीत के जीवन मूल्यों और जीवन पद्धति के मौलिक सिद्धान्तों का वर्तमान में परिवहन और आत्मसात होना संभव हो सकता है। किन्तु वर्तमान को उसके ऐतिहासिक संदर्भ से हटाकर अतीत में स्थानान्तरिक नहीं किया जा सकता। जीवन्त अतीत और स्वस्थ वर्तमान, प्राच्य और पाश्चात्य और आध्यात्म तथा उसके अविरूद्ध भौतिक तत्वों का समन्वय संभव एक वांछनीय है। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में महामना की कल्पना में एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की उद्भावना हुई।"



मालवीय जी महाराज के मन में एक समग्र शिक्षा की परिकल्पना थी, किन्तु सबसे पहले उनके सामने एक मौलिक प्रश्न था : विद्या अथवा शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिए ? यहाँ पर वे औनिषदिक आदर्श से प्रेरित थे। उपनिषदों में विद्या का उद्देश्य स्पष्ट लिखा हुआ है– 'सा विद्या या विमुक्तये' (विद्या वह है जो मुक्ति के लिए हो) और मुक्ति वह जो मानव को सभी प्रकार के बंधनों– आर्थिक, राजननीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक से छुटकारा दिलावे। उनके विचार हमें विद्या मुक्ति अथवा स्वतंत्रता के लिए ही है। विद्या मुक्ति का माध्यम है। इस विद्या की पद्धति स्वतंत्र होनी चाहिए और उसका अनुसरण होना चाहिए। स्वतंत्र अध्यापकों और छात्रों द्वारा जो स्वतः स्वतंत्र नहीं है वह दूसरों को मुक्ति का मार्गक नहीं बतला सकता। मुक्त ही दूसरों को मुक्त कर सकता है। (मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्) इस आदर्श को ध्यान में रखकर महामना ने प्रारम्भ से ही मानव व्यक्तित्व और चरित्र के विकास के लिए स्वतंत्र वातावरण का निर्माण किया। मालवीय जी के विचारों पर किसी एक दर्शन का ही आधिपत्य नहीं था। प्रत्येक दार्शनिक विचार धारा ने उनके मनन और चिन्तन को प्रभावित किया था। महामना जी का व्यक्तित्व उनके विचारों से अविचनी था। आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, यथार्थवाद, मानवतावाद एवं विश्ववाद सभी का प्रभाव महामना जी पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने सभी दर्शनों के श्रेष्ठ पक्षों को अंगीकृत कर तत्सम्बन्धी दोषों को त्याग किया। मुख्यतः आदर्शवाद और यथार्थवाद उनके विचारों में प्रतिबिम्बित होते हैं।

भारतवर्ष के आर्य–ऋषियों के सच्चे वंशज के रूप में मालवीय जी ने आदर्श ज्ञान को अर्थात् उस शिक्षा को जिसे हम ज्ञान कहते

हैं और जो मूल्यों के प्रति अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करता है, श्रेष्ठतर माना गया है। यह उनके आचरण में आदर्शवादी प्रवृत्ति का लक्षण था। परन्तु उन्होंने इस प्रवृत्ति में विश्व की नैसर्गिक प्रक्रियाओं एवं विशेष तथ्यों के प्रति नैतिक सम्मान को भी शामिल किया, जिसे हम मात्र एक शब्द में 'यथार्थवाद' कहते हैं। वस्तुतः उनमें आदर्शवाद और यथार्थवाद का जो समन्वय था, वही उन्हें आर्य धर्म के सच्चे प्रतिनिधि को यथार्थवाद के साथ आश्यचर्यजनक रूप में सुमेलित कर रखा था। उनकी उत्कृष्ट उपलब्धि के रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आदर्शवाद और यथार्थवाद के मेल का भव्य उदाहरण है। उन्होंने सभी दर्शनों के सार को लेकर एक नवीन दर्शन को जन्म दिया जिसे हम पुरा–प्रगतिवाद के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।

महामना का शिक्षा दर्शन वर्तमान के सावधान आंकलन, अतीत की प्रमाणिक और गहरी समझ तथा भविष्य के अपरिहार्य गतिक्रमों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया गया था। भारतीय शिक्षा को सच्ची सृजनात्मकता के पुनराविष्करण, कोटि–कोटि जन को उनके अपने ही सन्दर्भ में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक उपाय खोज लेने की दृष्टि प्रदान करने की शक्ति के साथ–साथ पश्चिम के नये ज्ञान तथा उसके लिए अपेक्षित समूचे तन्त्र से परिचित कराने और उस पर अधिकार प्रदान करने के लक्ष्य से परिचालित करने की आवश्यकता भी थी। सृजनशीलता के पुनराविष्करण कोटि–कोटि जन के समीप सन्दर्भ में ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उपाय को देखने की दृष्टि और पश्चिम के नये ज्ञान और तन्त्र को आत्मसात् करने के लक्ष्य के साथ अपनी निजता को बचाये ही रखना, अपितु उस पर दृढ़ होते जाना।

महामना के घोषित उद्देश्य प्राच्य और पश्चात्य ज्ञान के समाहार की उनकी चेतना को स्पष्ट करते हैं तथा देश के सर्वांगीण विकास एवं देश की पारम्परिक निजता की रक्षा के लिए उनकी चिन्ता



को व्यक्त करते हैं। शिक्षा को देश की व्यवसायिक आकांक्षा एवम् आवश्यकता के साथ संयुक्त कर महामना ने पेश की स्वतन्त्रता के संघर्ष के दिनों में एक सर्वांगीण शिक्षा–दर्शन और उसको क्रियान्वित करने का 'मॉडल' दिया स्वतन्त्रता के संघर्ष में राष्ट्रीय आन्दोलन को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के योगदान एवम् स्वातन्त्रयोत्तर युग में देश के औद्योगिक एवं वैज्ञानिक तकनीकि शिक्षा तन्त्र को खड़ा करने हेतु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की भूमिका ने महामना की दूर दृष्टि को असंदिग्ध रूप से सही प्रमाणित किया है।

इस अध्याय में मालवीय जी के उन विचारों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो शिक्षा के महत्व को प्रदर्शित करते हैं तथा जिनके अनुरूप शिक्षा के उद्देश्यों का प्रतिपालन किया गया है। इसी के साथ ही इस प्रकरण में यह भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि मालवीय जी की शिक्षा के स्वरूप को कितना विस्तार पूर्वक देखते थे। इसके अन्तर्गत विज्ञान, कला, तकनीकि, कृषि आदि सभी प्रकार की शिक्षाओं का उल्लेख किया गया है।

इसके अतिरिक्ति शोधार्थी माालवीय जी द्वारा प्रस्तुत शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षा का माध्यम, शिक्षण–विधियाँ, शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध, अनुशासन विद्यालय एवं शिक्षा के अन्य आयामों को प्रस्तुत करेगा –

1. मालवीय जी की दृष्टि में शिक्षा का महत्व।
2. शिक्षा का उद्देश्य।
    - शिक्षा का चारित्रिक विश्वास का उद्देश्य।
    - शिक्षा के नैतिक विकास का उद्देश्य।
    - शिक्षा का व्यवसायिक विकास का उद्देश्य।
    - शिक्षा के शारीरिक विकास का उद्देश्य।
    - शिक्षा का राष्ट्रीय उद्देश्य।
3. शिक्षा का स्वरूप।

- प्राथमिक शिक्षा।
- माध्यमिक शिक्षा।
- विश्वविद्यालयी शिक्षा।
- व्यवसायिक शिक्षा।
- शारीरिक शिक्षा।
- कृषि शिक्षा।
- स्त्री शिक्षा।

## 3.1 मालवीय जी की दृष्टि में शिक्षा का महत्व

एक शताब्दी पहले ब्रिटिश उपनिवेश के दिनों में भी सामाजिक न्याय के चेष्टा में कुछ महाप्राण समाज–सुधारक उठ खड़े हुए। उन्होंने महसूस किया था गरीबी, निरक्षरता, अन्धविश्वासों के तले दबी एक विशाल जनता भीषण शोषण का शिकार है। उन्होंने पाया भारतीय समाज जात–पात, धर्म की कहरताओं के चलते समरसता के आदर्शों से विच्युत है। सती प्रथा और अस्पृश्यता का असहनीय चलन इस विच्युति को ही उजागर कर रहा था। विदेशी मूल के शासकों को इस जर्जर, टूटे, अनेक इकाईयों में बंटे समाज व देश पर शासन करने में आसानी ही थी। अतएव उनके क्षरा किसी सुधारपरक हस्तक्षेप की आशा करना व्यर्थ था। देश की मिट्टी से उपजे सुधारक ही हमारी विनष्ट होती समाज–चेतना को पुनरूज्जीवित कर सकते थे।

मालवीय जी को एक अत्यन्त जागरूक सामाजिक कार्यकर्ता कहना अतियुक्ति न होगी। जिन्होंने शिक्षा, अध्ययन, वैचारिक मंथन तथा तर्कपूर्ण वैचारिक आदान–प्रदान को ही समाज–सुधार का एक मात्र हथियार समझा और स्त्री जाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक अधिकारियों के लिए सहानुभूतिहीन समाज के विरूद्ध मानवाधिकार की लड़ाई लड़ी। मालवीय जी तथा कविवर रवीन्द्र भी स्वामी विवेकानन्द के उस ज्वलन्त तथा सटीक शब्दों से सहमत थे, जो इस प्रकार हैं, –



> "शिक्षा के प्रसार के बिना देश का विकास कैसे संभव है।..... जब तक कि शिक्षा का प्रसार महिलाओं में तथा आम जनता में नहीं होता परिस्थितियों में नहीं लाया जा सकता।"

एक तरफ साधारण मेहनतकश जनता की विशाल तादात को निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त करना था और दूसरी तरफ देश की युवा शक्ति को मानव निर्माणकारी के शिक्षा के माध्यम से परिपूर्ण से विकसित करना था। मालवीय जी का यह भी मानना था कि मानव–मूल्यों और आदर्शों से प्रेरित होकर युवा पीढ़ी अपनी शिक्षा के प्रकाश से अपने चारों ओर फैली अशिक्षा की कालिमा को नष्ट करेगी। शिक्षा के हथियार से न केवल राष्ट्र की अस्मिता कायम होगी बल्कि कुरीतियों व अन्याय–शोषण का अन्त होकर सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त होगा।

मालवीय जी सामाजिक न्याय की बुनियाद के निर्माण का जो स्वप्न देखा था उसे सच में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में उन्होंने आधुनिक भारत के इतिहास में एक नये अध्याय को जोड़ा। भविष्य के भारत को सर्वोत्तम शिक्षा देने की प्रत्याशा को पूरी करने के लिए मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह कहना अनुचित न होगा कि यह विश्वविद्यालय 19वीं सदी के अन्त में आये नव जागरण के चिन्तन के ज्वार का आधार बने। रूढ़िग्रस्त दीवारों और परिचित दायरों के बाहर जाकर जीवन को देखने सुनने और परखने का नये विचारों से परिचित होने का विश्वविद्यालय में एक अदम्य उत्साह जागा। अपनी ही कमियों को बेरूखी के साथ देखना और परिवर्तन की संभावनाओं को सशक्त करना इस पूर्ण भारतीय विश्वविद्यालय का उद्देश्य था। इनका सर्वोच्च प्रयास था कि शिक्षा के द्वारा सामाजिक क्रान्ति लाना तथा वंचित हताश मानव के लिए सामाजिक न्याय की राह को सशक्त बनाना।

पं0 मालवीय ने यह पाया कि पाश्चात्परक शिक्षा–नीति से देश में सिर्फ क्लर्क तथा पराश्रयी चाटुकारों की पीढ़ी पनप रही थी। भारतीय संस्कृति को नीचा दिखाने वाली, धुन के समान समाज को नष्ट करने वाली एक शिक्षा व्यवस्था के बदले एक आत्म सम्मान जगाने वाली शिक्षा व्यवस्था को प्रचलित करने का उद्दीपन इनमें जागा। पेश प्रेम की शिक्षा से युवा मन को आलौकित करना ही उनका उद्देश्य था जिससे वह आगे बढ़कर देश की संस्कृति को स्थापित कर सके, कुप्रथाओं से देश को मुक्त कर सके और वंचित जनता के हाथ मजबूत कर सके।

"जब सारा देश अपने अधिकारों को न जान पायेगा और उनको पाने के लिए एक स्वर से अभिलाषा और उत्कण्ठा न दिखावेगा, तब तक ये अधिकार हमको नहीं मिलेंगे। ...... ऐसी अवस्था में जब प्रजा पढ़ी–लिखी हो और प्रजा के प्रमुख विद्वान, बुद्धिमान, परोपकारी और स्वार्थ निरपेक्ष हो तो कोई कारण से समता न कर सके। इसके लिए देश भर में उपकारी विद्या व प्रचार ही हमारा मुख्य कर्तव्य है।" **(अभ्युदय, ज्येष्ठ कृष्ण–9, संवत् 1964)**

1916 ई0 में स्थापित मालवीय जी का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारतीयों के 'आत्म नियन्त्रण' व 'आत्म अभिव्यक्ति' का पर्याय बन गया। युवाओं को आत्म निर्भर बनाने के लिए विज्ञान तथा तकनीकि शिक्षा की शुरूआत हुई और भारतीय परम्परा के साथ उनके जुड़ाव को दृढ़कर बनाने के लिए धर्म और प्राच्यविद्याओं का अध्ययन समानान्तर रूप से प्रचलित हुआ। आत्म को पर हिताय विकसित करना छात्रों का धर्म होना चाहिए, इस लक्ष्य को सामने रखते हुए मालवीय जी ने विद्यार्थियों से कहा, –

"अपने देशवासियों से प्रेम करो और उनमें एकता की भावना जागाओ। तुमसे विशाल धैर्य और सहनशक्ति की अपेक्षा की जाती है। अपने दलित भाइयों की उन्नति के लिए अपना समय व शक्ति अधिकाधिक समर्पित करो।"



शोषण के एक लम्बे इतिहास के पश्चात उन्होंने सामाजिक न्याय की तीव्र आवश्यकता को पहचाना। शिक्षा के अशक्त हथियार की ओर संकेत कर उन्होंने कहा, –

"हम सब इस देश में फैली हुई निरक्षरता को धिक्कारते हैं। इसके उन्मूलन के लिए हमें स्वराज्य प्राप्ति तक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं तुम सबसे, हर छात्र और छात्रा से आग्रह करता हूँ कि निरक्षरता के दूरीकरण की प्रतिज्ञा करोगे और इस देश के लोगों में शिक्षा–प्रसार का अभियान चलाओगे।"

जैसा कि देश के लिए हरेक चिन्ता करने वाले व्यक्ति ने सोचा, मालवीय जी ने भी छात्रों को गाँव जाने के लिए कहा,–

"गाँव जाइए ओर देश वासियों के बीच काम कीजिएस्कूल खोलिए जनता को पढ़ने, लिखने और गणित के ज्ञान से शिक्षित कीजिए।" साथ ही उन्होंने इस शिक्षा को पूर्ण बनाने के लिए कहा कि धर्म की शिक्षा भी अत्यावश्यक है। यह धर्म है प्रेम का, सेवा का, सहनशील और परस्पर के प्रति सम्मान का। सही रूप से समझा गया धर्म ही मानव में समरसता व आनन्द को फैला सकता है। सिर्फ मानव नहीं, ईश्वर के हरेक प्राणी के लिए भ्रातृत्व दया व करूणा की भावना इस शिक्षा का अन्तर्निहित उद्देश्य होगा। **(महामना के 12वें दीक्षान्त समारोह का भाषण, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 4 दिसम्बर 1929)**

राष्ट्रवाद की उपलब्धि के विभिन्न साधनों की चर्चा करते हुए मालवीय जी ने प्लेटों की भाँति शिक्षा को मानव–उत्थान व राष्ट्रीय परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम बताया और विद्यार्थियों में राष्ट्र

भक्ति की भावना जागृत करने के लिए शिक्षा के प्रसार की अनिवार्यता पर बल दिया। शिक्षा के अतिरिक्त उनके विचार से समाज में व्याप्त कुरीतियाँ भी शक्तिशाली भारतीय राष्ट्र की प्राप्ति में बाधा है। अतः 1935 के महासभा के पूना अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय सम्भाषण में उन्होंने भारतीयों से अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियां को दूर करने का आहवान किया और कहा कि राष्ट्रवाद की शिखा समस्त भारतीयों के हृदय में प्रज्जवलित रहनी चाहिए।

स्वदेशी के साथ–साथ स्वराज्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए सन् 1909 के लाहौर में होने वाली चौबीसवीं भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा, –

> "स्वायत्त शासन का अर्थ है– भारत में देश के निर्वाचित सदस्यों द्वारा जनता का शासन, शिक्षित समाज की यह भावना इंग्लैण्ड के उस सत्साहित्य के अध्ययन का अवश्यम्भावी परिणाम है जो कि स्वतन्त्रता के प्रेम से ओत–प्रेत है और जो इस सत्य को स्पष्ट करता है हि स्वायत्त शासन ही उत्तम कोटि का शासन है। (**Pt. Sitaram Chaturvedi (Ed.), Mahamana Pt. M.M. Mahaviya Vol.-18, Kashi Paush Krishnashatami, 1973 V.S. V.S. P.P. 319-320**)

मालवीय जी निरन्तर यह माँग करते रहे कि ब्रिटिश सरकार भारत के राजनीतिक उत्थान व कल्याण के लिए स्वभाग्य निर्णय का सिद्धान्त देश के लिए शीघ्रातिशीघ्र लागू करें। स्वराज्य प्राप्त की तीन आवश्यक शर्तों का उल्लेख करते हुए मालवीय जी ने बल आत्म–निर्णय का अधिकार हिन्दू–मुस्लिम एकता और शिक्षा की उत्तम व्यवस्था पर दिया।

इस प्रकार अपने लेखों और भाषणों में मालवीय जी ने स्वराज्य और स्वशासन के लिए देश कीर पराधीन जनता के मनोबल को ऊँचा



उठाने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए बगैर हताश हुए धैर्यपूर्वक निरन्तर आगे बढ़ने, शारीरिक और सैनिक शिक्षा के साथ–साथ स्वराज्य की सेना तैयार करने, आर्थिक मामलों में राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाने के लिए कृषि–वाणिज्य की उन्नति पर ध्यान देने, छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने सभी स्थानों पर पंचायतों की स्थापना कर उसमें सभी वर्ण के लोगों को स्थान दिये जाने और भारत के प्राचीन ऋषियों द्वारा बतायी गयी जीवन पद्धति लागू करने तथा सभी को साक्षर बनाने के उद्देश्य से सम्पूर्ण देश के लिए एक व्यापक लोक शिक्षा समिति स्थापित करने के लिए प्रेरित किया।

यह भी सत्य है कि आर्थिक उन्नति ही हमारे जीवन को समुन्नत एवं सार्थक नहीं बना सकती। मात्र अर्थ की उपलब्धि मनुष्य को अनर्थ की ओर मोड़ सकती है। उसके अतिरिक्त जब तक हममें आत्मिक और नैतिक बल नहीं होगा, हममें परस्पर सम्मान एवं सहयोग, नैतिकता और देशभक्ति, त्याग और तपस्या की भावना नहीं उत्पन्न होगी, जब तक हम न तो समृद्धि हो सकते हैं और न सुखी एवं शान्त जीवन व्यतीत कर सकते हैं। भारत का प्रथम उद्देश्य आर्थिक विकास की होड़ में अपना स्थान बनाना नहीं, इससे कुछ अलग हटकर उन उच्च जीवन मूल्यों की तलाश करना है, जिसकेक अभाव में आज पूरा विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है। मालवीय जी विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय उन्नति, एकता, विश्व बन्धुत्व तथा विश्व शान्ति के संदेश का एक उच्च स्तरीय केन्द्र बनाना चाहते थे। आर्थिक उन्नति को वे सिर्फ एक साधन मानते थे, साध्य नहीं। आध्यात्मिक और भौतिक ज्ञान का परस्पर विरोध संसार के लिए घातक है, इस बात को महामना भलीभाँति अनुभव करते थे। वे आध्यात्मिक ज्ञान के साथ आधुनिक विज्ञान की सहायता से देश को समृद्धि बनाना चाहते थे। इसलिए विश्वविद्यालय में पाठ्य–विषयों के सम्बन्ध में उन्होंने इस बात का ध्यान रखा जहाँ एक ओर धर्म, दर्शन तथा सामाजिक शास्त्रों का

अध्ययन–अध्यापन हो, वहाँ दूसरी ओर वाणिज्य, शुद्ध विज्ञान, यंत्र विज्ञान तथा औद्योगिक विज्ञान आदि पार्थिव और भौतिक शास्त्रों का भी उच्चतम ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञान के इन दोनों पक्षों के समन्वय तथा संवर्धन के वे बहुत बड़े समर्थक थे।

> ''जीवन का सर्वांगीण विकास मालवीय जी की शिक्षा पद्धति का मूल मंत्र था। वे चाहते थे कि विद्यार्थियों के लिए शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध हो कि वे अपनी शारीरिक, बौद्धिक तथा भावात्मक शक्तियों को परिपुष्ट तथा विकसित कर सकें और आगे चलकर किसी व्यवसाय द्वारा सच्चाई और ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर सकें, कलापूर्ण और सौन्दर्यमय जीवन व्यतीत कर सकें, समाज में आदरणीय और विश्वासपात्र बन सकें तथा देश भक्ति से जो मनुष्य को उच्च कोटि की सेवा करने की ओर प्रवृत्ति करती है। अपने जीवन को अलंकृत कर राष्ट्र की समुचित सेवा कर सकें।''
> (लाल–1978, पृ0 615)

मालवीय जी शिक्षा को मानव मात्र का अधिकार तथा उसका समुचित प्रबन्ध राज्य का कर्तव्य समझते थे। वे चाहते थे कि राष्ट्रीय प्रणाली के आधार पर प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों में सर्व साधारण के लिए शिक्षा निःशुल्क दी जाय, जो अनिवार्य भी हो। उनका कहना था कि सब स्तर पर शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध हो कि कोई बच्चा निर्धन होने के कारण उससे वंचित न रह पाये। वे बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर एलिफिन्सटन की इस बात से सहमत थे कि "गरीबी की सुख–शान्ति बहुत हद तक शिक्षा पर निर्भर है। इसके जरिये ही वे विवेक और आत्म सम्मान का स्वभाव प्राप्त कर सकते हैं जिससे सब गुण विकसित होते हैं। (प्रान्तीय कौंसल में मालवीय जी का भाषण, सन् 1907)

उनका सरकार से अनुरोध था कि वह ऊँचे पैमाने पर वैज्ञानिक पद्धति द्वारा कृषि, शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा तथा उच्चस्तरीय ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध करें। उनकी माँग थी कि सर्व साधारण स्कूलों में बौद्धिक शिक्षा के साथ–साथ हस्तकला की शिक्षा भी दी जाय। विद्यार्थियों के ज्ञान को व्यावहारिक और प्रयोगात्मक बनाया जाय। लेबोरेटरी वर्क और शाप वर्क द्वारा उनमें प्रेक्षणा की शक्ति पैदा की जाये। उनके ज्ञान को यथा तथ्य बनाया जाय, उनमें आत्म निर्भरता की आदत डाली जाय तथा उनके ज्ञान को जीवन उपयोगी बनाया जाय। (द्विवेदी 1981, पृ0–142)



मालवीय जी ने सब प्रकार और सब स्तर की शिक्षा के विस्तार की पुष्टि की। वे प्रारम्भिक शिक्षा को सब सुधारों का मूल मानते थे और चाहते थे कि सब बच्चों के हित के लिए अनिवार्यता का नियम लागू करें। उन्होंने कहा कि "राजा और प्रजा दोनों के हितों की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक बालक और बालिका शिक्षा प्राप्त करें और यदि इस लक्ष्य को पूरा करना है तो सरकार को यह बात अभिभावकों की इच्छा पर नहीं छोड़नी चाहिए कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजें या न भेजें। बालिकाओं के सम्बन्ध में अवश्य ही अभी कोई अनिवार्यता का नियम नहीं बनाना चाहिए। पर यदि बालकों के लिए स्वेच्छा नीति का अवलम्बन किया गया तो सर्वजनिक शिक्षा का प्रसार नहीं हो सकेगा, किसी हद तक शिक्षा अवश्य प्रसारित होगी, पर बहुसंख्यक जनता अशिक्षित ही रह जायेगी। प्रत्येक सभ्य देश ने यह स्वीकार किया है कि अनिवार्य प्रणाली ही एक ऐसा सुगम मार्ग है जिसके द्वारा सार्वजनिक शिक्षा के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। इसके बिना किसी देश ने न आज तक सफलता प्राप्त की है और न वह हमें प्राप्त हो सकती है। (प्रोसोडिंग– गवर्नन जनरल की कौंसिल सन् 1912, जि0 50, पृ0 608) मालवीय जी प्राथमिक शिक्षा के साथ ही साथ माध्यमिक शिक्षा का विकास भी करना चाहते थे। सन् 1914 में उन्होंने माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सरकार से आग्रह किया।

उन्होंने कहा कि माध्यमिक शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा हो कि उसे प्राप्त करने पर विद्यार्थी जीवन में प्रवेश करने तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा से लाभ उठाने के लिए अधिक योग्य बन सके। उनका सुझाव था कि इण्टरमीडिएट कक्षा की दो वर्ष की पढ़ाई की व्यवस्था सब हाईस्कूल में की जाय और बी0ए0 की शिक्षा की अवधि दो वर्ष के बजाय तीन वर्ष कर दी जाए।

मालवीय जी चाहते थे कि विश्वविद्यालयों को शैक्षिक संस्थानों का स्वरूप दिया जाय, उन्हें जीवन और ज्योति का केन्द्र बनाया जाय। वहाँ के विद्यार्थी ज्ञान में संसार के दूसरे प्रगतिशील देशों के विद्यार्थियों से समान हों तथा उत्कृष्ट सभ्य जीवन बिताने के योग्य बन सकें। भगवद्भक्ति और देशप्रेम से अपने जीवन को अनुप्रमाणित कर समाज की सेवा कर सकें। उन्होंने सन् 1914 मं उच्च स्तर की प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त विदेश जाने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने की माँग की। **(प्रोसीडिंग गवर्नर जनरल की कौंसल, सन् 1914, जि0 52, पृ0– 1032)**

मालवीय जी ने शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जीवन की सम्पूर्णता और इसकी विविध समस्याएं इसके विषय हैं। इसका प्रारम्भ गर्भाधान से होता है और मृत्युपर्यन्त इसकी प्रक्रिया चलती रहती है। इसके द्वारा व्यक्ति समाज के साथ एक सूत्र में बंधता है, राष्ट्रहित की बात सोचता है। समाज को भूत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की ओर ले जाने के लिए शिक्षा एक श्रृंखला का कार्य करती है। स्वतंत्र राष्ट्र के सम्मुन्नत नागरिकों के लिए शिक्षा का आदर्श ऐसा हो जो उनमें उनकी समस्त अन्तर्भूत शक्तियों का विकास करे, व्यक्ति के स्वतंत्र प्रतिभा का विकास हो, वह अपने शरीर, मन और आत्मा के विकास में संलग्न रहकर अपना सर्वांगीण विकास करने में समर्थ बन सके। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति के अग्रदूत रसों ने कहा है कि बालकों में



जन्मजात स्वतन्त्र मानवीय शक्तियाँ हैं और उसका विकास शिक्षा द्वारा हम लोगों को करना है। मानव की स्वाभाविक स्वार्थमूलक वृत्तियों के परिणाम स्वरूप ही बालकों की स्वछन्द चेतना कुण्ठित हो जाती है। जैसा कि वर्ड्सवर्थ ने कहा है कि, –

"शिशु एक ऐसा प्राणी है जो अमरत्व के महान सागर के किनारे पाता है। शिक्षा का ध्येय प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता बढ़ाकर उत्कर्ष की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। यदि किसी राष्ट्र में एक पीढ़ी में भी शिक्षा की अवहेलना कर दी जाए तो वह राष्ट्र बर्बरता की अवस्था में पहुँच जायेगा। भले ही वह एक शक्तिशाली राष्ट्र क्यों न हो। अतएव शिक्षा से अधिक महत्व का दूसरा कोई कार्य नहीं है। **(मिश्र, 1972, पृ0 241)**

मालवीय जी के अनुसार, –

"वास्तविक शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का समुचित विकास करना है ताकि वह अपने कर्म क्षेत्र में सफलता पूर्वक कार्य कर समूचे देश व समाज की प्रगति में भाग ले सके। वह देश व समाज में व्याप्त पराधीनता, बेकारी, शोषण, गरीबी, अन्ध विश्वास आदि बुराईयों को दूर करने में तन–मन–धन से सहयोग कर सके और इस प्रकार के कार्यों से अपना और अपने देश वासियों का जीवन सुखी तथा समृद्ध बना सकें।" **(गुप्त 1980, पृ0 93)**

## मालवीय जी की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य

मालवीय जी के अनुसार, –

"शिक्षा सारे सुधारों का जड़ है। शिक्षा की प्रधानता तथा आवश्यकता को कभी बढ़ा–चढ़ाकर नहीं कहा जा सकता। बढ़ी–चढ़ी निर्धनता के मूल में जनता की अनिभिज्ञता का निवास है।"

"शिक्षा तात्पर्य है– हृदय और मन की सभी शक्तियों का सम्यक विकास और उनकी पूर्ण पुष्टि। यदि मैं अपने देश के भावी कर्णधारों को अपनी शिक्षा से सुसंस्कृत नहीं बना सका, तो सब कुछ व्यर्थ है, यह शिक्षा बेकार है।"

"शिक्षा प्रणाली का प्रधान ध्येय यह है कि वह नवयुवकों को योग्य नागरिक बनावे और जनता की बुद्धि का विकास करें। मालवीय जी ने जीवन के उद्देश्यों यथा "धर्मार्थकाममोक्ष" के आधार पर शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये हैं –

1. चारित्रिक विकास का उद्देश्य।
2. नैतिक विकास का उद्देश्य।
3. व्यवसायिक विकास का उद्देश्य।
4. शारीरिक विकास का उद्देश्य।
5. राष्ट्रीय विकास का उद्देश्य।
6. सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य।

### 3.2.1 चारित्रिक विकास का उद्देश्य

मालवीय जी विद्यार्थियों का चरित्र गठन शिक्षा का प्रथम उद्देश्य मानते थे। शिक्षा का उद्देश्य केवल कार्यक्षम नागरिक अथवा सेवा आयोग के लिए उपयुक्त कर्मचारी उत्पन्न करना नहीं था। वे क्षमता और जानकारी से अधिक महत्व भावात्मक विकास और चरित्र गठन को देते थे। इसलिए विश्वविद्यालय में ऐसे वातावरण का उन्होंने संयोजन किया था, जहाँ से सम्मुन्नत, स्वाभिमानी और लोक–सेवी मनुष्य निकल सकें। छात्र–संघ, पार्लियामेन्ट, साहित्यिक समितियाँ, व्याख्यान मालायें, कथावार्ता, पर्व उत्सव आदि मनुष्य निर्माण के माध्यम थे।



मालवीय जी की प्रेरणा और प्रभाव उनके जीवन का बहुत बड़ा सम्बल और प्रेरणा का स्रोत था। महामना का पराधीनता को दूर कर स्वाधीनता प्राप्त करना परम लक्ष्य था किन्तु पराधीनता का कारण अविद्या या चरित्रहीनता है, ऐसा उनका अभिमत था। अतः न केवल स्वाधीनता प्राप्ति, बल्कि उसके प्राप्त होने पर उसकी रक्षा के लिए अविद्या एवं चरित्रहीनता के विनाश को वे आवश्यक मानते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना बनायी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चार उद्देश्यों में से एक है, "धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र का गठन करना" सत्यनिष्ठ चरित्र समन्वित व्यक्तित्व का आधार है। शील सद्गुण और सदाचार के धरातल पर ही अन्य जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापना हो सकती है। महामना की दृष्टि में सज्जनता–विहीन ज्ञान निरर्थक था। जीवन के हर क्षेत्र में आचरण की शुद्धि सर्वोपरि होनी चाहिए। इसी से व्यक्गित एवं सामाजिक जीवन मर्यादित होते हैं। आपके अनुसार :–

''आचरण की शुद्धि, पुष्टि और परिपक्वता के लिए मालवीय जी धर्म, नागरिकता और नैतिकता की शिक्षा आवश्यक समझते थे। उनकी धर्म की व्याख्या नैतिकता से ओत–प्रोत और नागरिकता से समन्वित थी। वे देश भक्ति को धर्म का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार करते थे। उनकी नैतिकता बहुत अंशों में धर्म ग्रन्थों पर आधारित थी। उनके विचार में सद्भावनाओं से अनुप्रमाणित, सदाचार से विभूषित जीवन ही आत्मोत्कर्ष और जनकल्याण का उत्तम साधन हो सकता है।'' **(अभ्युदय, 1907)**

चरित्र–निर्माण की ओर उनका पूरा ध्यान था। ..... एक वरिष्ठ अध्यापक ने अपनी एक छात्रा से अन्तरजातीय और अन्तर प्रादेशीय

विवाह कर लिया, तो बाबू जी ने कहा – 'आपने जो किया अनुचित नहीं है। किन्तु आपके मंगलमय सुखी जीवन के लिए आर्शीवाद देते हुए भी मैं कहूँगा कि आपने विश्वविद्यालय में अच्छा उदाहरण नहीं प्रस्तुत किया है। अच्छा होगा कि आप विश्वविद्यालय छोड़ दे।' अध्यापक ने महामना के विचार का आदर किया।

विद्वान एवं योग्य होते हुए भी चरित्र–हीन व्यक्ति देश भक्ति की भावना से रहित होते हैं, अतः वे चरित्र निर्माण के लिए सत्य और ब्रह्मचर्य की शिक्षा धन–संग्रह से समझते थे।

चरित्र–गठन की शिक्षा धन–संग्रह से सदा उच्च समझी गयी थी (वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्त मायाति याति च) वेद शास्त्रों के कोरे ज्ञान की अपेक्षा चरित्र की पवित्रता को बहुत अधिक उच्च स्थान दिया गया था। (सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि। हिन्दू शास्त्रों में क्षमा, धैर्य, शम, दम, दया, परोपकार अर्थात् वे सब गुण सुन्दर उपदेशों, कथाओं तथा आख्यापिकाओं द्वारा भली प्रकार निर्देशित किए गये हैं, जिनके पालन से मनुष्य का चरित्र अधिक दिव्य, अधिक पवित्र, अधिक उदान्त बनता है, जिनके ऊपर मनुष्य समाज सधा हुआ है तथा जो मनुष्य मात्र में शानित और कल्याण के बीज बोते हैं।

छात्रों में विनय और अनुशासन की मालवीय जी की एक विशिष्ट कल्पना थी। विद्यार्थियों

में शिष्यत्व का भाव ही विनय अथवा अनुशासन का आधार है। यह अधिकारियों और अध्यापकों की सहानुभूति, वात्सल्य और हितकामना से उत्पन्न होता है। विनय प्रभावात्मक और अन्तर्निहित होता है। नियन्त्रण शक्ति और प्रहार से यह पैदा नहीं किया जा सकता है। चरित्र निर्माण के संदर्भ में मालवीय जी कहतें थे :–

> "हम धर्म को चरित्र–निर्माण का सीधा मार्ग और सांसारिक सुख का सच्चा द्वार समझते हैं। हम देश भक्ति को सर्वोत्तम शाक्ति मानते हैं, जो मनुष्य को उच्च कोटि की निःस्वार्थ सेवा की ओर प्रवृत्ति करती है। अतएव हम लोग विद्यार्थियों की दोनो ही प्रकार की शिक्षा से प्रभावित करते हैं।"



मालवीय जी गाँधी जी की भाँति चरित्र विकास पर अधिक बल देते थे। शिक्षा से उनका तात्पर्य केवल साक्षरता का विकास नहीं बल्कि चरित्र का विकास था। उनके विचार से उनके समय में छात्रों में जो चरित्रहीनता दिखलायी पड़ती थी उसकी मूल जिम्मेदारी शिक्षा व्यवस्था पर थी। मालवीय जी कहना था कि यदि शिक्षित व्यक्ति का हृदय पवित्र न हो वह अपने उन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण न रख सके तो पूर्णरूप से शिक्षित कहलाने का अधिकार नहीं है। चरित्र के अभाव में वे शिक्षा की कल्पना नहीं कर सकते थे। चरित्र का तात्पर्य उनके व्यक्तिगत पवित्रता से थी। मालवीय जी के विचार से सम्पूर्ण वेदों तथा संस्कृत साहित्य का ज्ञान व्यर्थ है। यदि उसके माध्यम से चरित्र का विकास न हो सके। सम्पूर्ण ज्ञान चरित्र विकास का एक साधन मात्र है। उन्होंने कई बार दुहराया है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक राष्ट्र यदि चरित्र का कर ले तो संसार के सभी समस्याओं का निराकरण संभव हो जाय। चरित्र विकास के बारे में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह (1929) में बोलते हुए उन्होंने कहा था,

> "चरित्र का निर्माण न तो कोई प्राचार्य कर सकता है और न अध्यापक और न ही पुस्तकों के पन्ने पढ़ने से होता है। चरित्र का निर्माण व्यक्ति स्वयं करता है और यह पवित्र व्यवहार से उत्पन्न होता है। चरित्र निर्माण के लिए बहुत त्याग, तपस्या, धैर्य और संयम की आवश्यकता है।" **(चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 50)**

### 3.2.2 नैतिक विकास का उद्देश्य

मालवीय जी ने अपनी यात्राओं एवं अपने सामाजिक संबंधों में यह अनुभव किया कि देश में धर्म का सर्वत्र तिरस्कार हो रहा है।

उनके विचार में धर्म ही नैतिकता परहित साधन एवं देश–प्रेम के लिए आधार प्रदान करता है अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत को राष्ट्र के रूप में पुनर्जीवित करने के लिए यह आवश्यक है कि यहाँ के नवयुवकों एवं नवयुवतियों को प्राचीन आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों से अवगत कराया जाय। यह कार्य शिक्षा के समुचित प्रबन्ध के बिना संभव नहीं था।

> "अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते, ततो भूप इव ते तमो य उ विद्यायांरताः विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेतोभयं सह, अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमुतमसुते।"

महामना मालवीय जी ने उक्त आप्तवाणी को आत्मसात करते हुए अपनी शिक्षा प्रणाली व शिक्षा दर्शन में भौतिक विज्ञान और आध्यात्म चेतना का मणि–कांचन योग प्रस्तुत किया। नैतिक चरित्र का निर्माण और आध्यात्मिक अनुशासन महामना मालवीय जी की शिक्षा अवधारणा के आधारभूत तत्व थे। उनका उद्देश्य विद्यार्थियों की प्रतिभा एवं रचनात्म प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना था ताकि वे सही अर्थों में अनुशासित व उत्तरदायी नागरिक बन कर देश के विकास में सार्थक भूमिका निभा सकें। उन महान निति–नियामक और शिक्षा शास्त्री द्वारा स्थापित उदात्त मूल्यों को हम किस सीमा तक अक्षुण्ण रखने में सफल हुए हैं, यही हम सबके लिए विचारणीय व चिंतन का विषय है।

महामना के शिक्षा दर्शन का मूल मंत्र था– जीवन मूल्यों से अनुप्रमाणित ऐसे समन्वित व्यक्तित्व का विकास जिसके बौद्धिक, नैतिक और भावात्मक सभी पक्ष पूर्णरूपेण समुन्नत हों। उनका मानना था कि ऐसे ही व्यक्ति एक अच्छे, कल्याणकारी समाज के उत्थान का आधार होते हैं, वे ही भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते हैं और साथ ही एक सुखी, सार्थक



जीवन यापन का आनन्द भी उठा पाते हैं। इस व्यक्ति–निर्माण की शिक्षा व्यवस्था के एक प्रमुख स्तंभ थे, भारतीय जीवन दर्शन एवं सांस्कृतिक परम्परा के वे उत्कृष्ट मूल्य को मानव जीवन को मूल्यवान बनाते हैं, उसे गरिमा प्रदान करते हैं और व्यक्ति को समष्टि से जोड़ते हैं।

विश्वविद्यालय के उपरोक्त उद्देश्य में नीति शिक्षा को धर्म के साथ रखकर यही प्रतिस्थापना की गयी है कि नैतिकता ही धर्म का केन्द्र बिन्दु है। नैतिक व्यवहार एक अच्छे व्यक्तित्व का प्रमुख लक्षण है। इसी आधार पर अच्छे सामाजिक संबंध स्थापित होते हैं। नैतिक सिद्धान्तों द्वारा ही न्यायपूर्ण, सामाजिक, समतावादी, सामाजिक संस्थाओं का निर्माण होता है।

नैतिक चेतना ही हमें अपने सामाजिक, नागरिक एवं मानवीय कर्त्तव्यों का स्मरण दिलाती है। यही यह दायित्व–बोध कराती है कि मानव द्वारा अर्जित नाना प्रकार के ज्ञान–विज्ञान का प्रयोग मानव हित में किया जाना चाहिए। इस नैतिक दायित्व–बोध के अभाव में आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं उस पर आधारित औद्योगिक, आर्थिक और व्यापारिक व्यवस्थाओं ने सम्पूर्ण मानवता के समक्ष अन्याय प्रकार की विभीषिकाएँ उत्पन्न कर दी हैं। इस अभाव की पीड़ा आज पश्चिम के देशों में अधिक हो रही है। 1979 की यूनेस्को रिपोर्ट में जोर देकर कहा गया है कि नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा में उचित स्थान मिलना चाहिए (**UNESCO, Report MINEDASO, quoted in N N Kar, Value Education. The Associated Publishers, 1996, P-39**) यही बात महामना के शिक्षा दर्शन में इस शताब्दी के आरम्भ में ही समाविष्ट कर ली गयी थी।

यद्यपि हिन्दू विश्वविद्यालय की औपचारिक शिक्षा पद्धति, विषय वस्तु, पाठ्यक्रम आदि पाश्चात्य विश्वविद्यालयों के ही अनुरूप थे तथापि इसके साथ धर्म शिक्षा की भी कई व्यवस्थाऐं थीं। जैसा कि

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि यह धर्म–शिक्षा वस्तुतः जीवन–मूल्यों की, मानव–मूल्यों की ही शिक्षा थी। धर्म एक अनिवार्य विषय था, जिसमें पास होना सभी छात्र–छात्राओं के लिए अनिवार्य था। लेकिन इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों को इससे मुक्त रखा गया था। इसके अतिरिक्त कई अन्य अनौपचारिक व्यवस्थाएँ भी थीं। प्रति रविवार गीता समिति द्वारा गीता व्याख्यान दिया करते थे। उच्च कोटि के अन्य विद्वानों को भी इसके लिए आमंत्रित किया जाता था। इसी प्रकार एकादशी को एकादशी कथा के माध्यम से नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों की वे चर्चा किया करते थे।

जिस नैतिकता का हमारे ऋषियों तथा महात्माओं ने समर्थन किया है उसमें मनुष्य के जाति के अक्षय अस्तित्व और शांतिपूर्ण सहयोग के गुण भलि–भाँति निहित है। इसका ध्येय तो पशु–पक्षियों तक को हिंसा से बचाना है। अहिंसा मनुष्य के सबसे सुन्दर गुणों में से एक गुण समझा गया है और समाज के समस्त मनुष्य इस नियम का यथाविधि पालन करते हैं। जो मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था से ऊँची अवस्था को प्राप्त करना चाहता है उसे अहिंसा ब्रत का पालन करना अति आवश्यक है। सत्य मनुष्य का मुख्य धर्म तथा कर्त्तव्य है। सत्यान्नास्ति परोधर्मः। श्रुति, स्मुति, इतिहास तथा पुराण सबने सत्य को मनुष्य का सर्व प्रथम धर्म माना है और सबमें मनुष्य को प्रत्येक समय तथा प्रत्येक अवस्था पर सत्य जैसे अमूल्य रत्न की रक्षा करने के लिए उद्यत रहने के लिए प्रेरित किया गया है। **(दर एण्ड सोमस्कंदन**, 1966, पृ0 53–54) **(History of the Banaras Hindu Uni)**

मालवीय जी ने नैतिकता को धर्म का अंग स्वीकार करते थे। धर्म विहीन नैतिकता का प्रसार तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवहार का और वैयक्तिक चरित्र का परिशोधन और नवनिर्माण ही उनका मुख्य उद्देश्य था।



### 3.2.3 व्यावसायिक विकास का उद्देश्य

मालवीय जी का विचार था कि आधुनिक युग की प्रगति एवं स्थिति को सामने रखते हुए देश के अधिक से अधिक विद्यालयों में व्यवसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय ताकि देश की बेकारी दूर की जा सके। इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य उत्पादन और धनोपार्जन होगा जिससे कि शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को रूपये–पैसे की चिन्ता से मुक्ति और देश में उद्योग–धन्धे पनपें। **(गुप्त**, 1980, पृ0 104)

सोमवार 26 जनवरी सन् 1920 ई0 को सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज के काशी नरेश हॉल में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वितीय उपाधि–वितरण ोत्सव के अवसर पर पूज्य मालवीय जी ने अपने दीक्षान्त भाषण में कहा,–

> "केवल कला–सम्बन्धी शिक्षा देने से ही किसी देश का हित नहीं हो सकता, अपितु विज्ञान की पिछली शताब्दियों की उन्नति को देखते हुए तथा विज्ञान के प्रयोगात्मक क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति हुई है, उसको देखते हुए हममें से कोई भी विचारशील व्यक्ति यह कहने का साहस न करेगा कि प्रारम्भिक स्कूलों में जो शिक्षा–व्यवस्था की जाय, उसमें विज्ञान की शिक्षा का कार्यक्रम न हो तथा हाईस्कूलों में किसी प्रकार की उद्योग–धन्धा–सम्बन्धी शिक्षा का उचित प्रबन्ध न हो।"

विद्यार्थियों को इस योग्य भी बना दिया जाना चाहिए कि वे किसी न किसी उपाय से अपना जीविकोपार्जन कर सकें। हाईस्कूल की शिक्षा अन्य देशों की शिक्षा की भाँति तभी सफल मानी जा सकती है, जब वह विद्यार्थियों को अथार्जन के योग्य बनाने वाली हो। शिक्षा के लिए युवकों को दूर नहीं जाना पड़े और छात्र अर्थकारी शिक्षा कम व्यय पर अपने समीप के विद्यालय में ही प्राप्त कर सकें, ऐसी

व्यवस्था होनी चाहिए।" उन्होंने सर्वसाधारण स्कूलों में बौद्धिक शिखा के साथ–साथ हस्तकला की शिक्षा जरूरी बताया है। वे चाहते थे कि विद्यार्थियों के ज्ञान को व्यावहारिक और प्रयोगात्मक बनाया जाय। लेबोरेटरी तथा वर्कशॉप द्वारा उनमें प्रेक्षण (Observation) की शक्ति पैदा की जाय। उनके ज्ञान को यथातथ्य जीवनोपयोगी बनाया जाय। ऐसा सुझाव उन्होंने सन् 1907 के प्रान्तीय कौंसिल में रखा था। वे शिक्षा संस्था में उच्चस्तरीय विद्वानों को रखने की आवश्यकता समझते थे, जो अपने अध्ययन एवं अनुसंधान द्वारा विद्यार्थियों को अनुप्रमाणित तथा प्रशिक्षित करें और जो वास्तव में विद्धत्ता, प्रतिभा की खोज और विकास तथा वैज्ञानिक ज्ञान और अनुसंधान की तरक्की एवं व्यवसायिक स्तर के अन्नयन का केन्द्र बन सके, ऐसा विचार उन्होंने सन् 1904 के प्रान्तीय कौंसिल में प्रस्तुत किया था।

इसी दीक्षांत भाषण में उन्होंने बेरोजगारी के सवाल पर बोलते हुए कहा था कि,

> "आज बेरोजगारी का प्रमुख कारण है कि हमारे विश्वविद्यालय विभिन्न विषयों की शिक्षा नहीं देते। उनकी शिक्षा अर्थपरक नहीं है। कला अथवा विज्ञान में उपाधि प्राप्त करने वाले विद्यार्थी केवल एक शिक्षक या राज्य कर्मचारी के पद के योग्य ही रहते हैं, परन्तु स्कूल तथा कॉलेज और नौकरियों में प्रतिवर्ष निकले हुए स्नातकों की अल्पसंख्या में ही नियुक्ति हो सकती है। इन सभी का एक मात्र उपाय यही है कि व्यापार, कृषि, शिल्पादि कला, अभियांत्रिकी तथा प्रयोगात्मक रसायनों में शुद्ध ढंग पर भरपूर शिक्षा का विकास किया जाय। शिक्षा को ऐसा क्रियात्मक रूप देने की आवश्यकता है, जिसकी माँग सदैव बनी रहे और इस माँग की उन्नति स्थिर चित्त होकर की जाय। सरकार तथा विश्वविद्यालयों को इस कार्य में सहयोग करना चाहिए कि वे नवयुवकों को उपयुक्त ढंग की शिक्षा दें और जीवन–निर्वाह की वृत्तियों का प्रबन्ध करें।" उनके अनुसार,– "इस वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोश यह है कि बीस वर्ष की शिक्षा के बाद भी भारतीय नवयुवक अपना, अपने स्त्री–बच्चों तथा निर्धन माता–पिता के निर्वाह के लिए कुछ नहीं कर पाता। अतः वर्तमान शिक्षा–प्रणाली जड़ से ही दोषमुक्त है और इसमें आमूल सुधार की आवश्यकता है, जो किसी व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। इसके लिए सामूहिक एवं राजकीय प्रयत्न होने चाहिए।''



पं0 मालवीय जी ने औद्योगिक, व्यापारिक शिल्प, सैनिक आदि की शिक्षा पर भी अपना काफी सुझाव रखा, स्वतन्त्र भारत ने इन पर समुचित ध्यान दिया है। सन् 1909 के लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में आपने औद्योगिक, यांत्रिक, शिल्पशास्त्र आदि से सम्बन्धित शिक्षा पर लम्बा सुझाव प्रस्तुत किया था। सन् 1907 के प्रान्तीय कौंसिल में भी इस प्रसंग को उठाया था। आपकी माँग थी कि प्रत्येक जिले, कम से कम प्रत्येक कमीश्नरों में ऐसी माध्यमिक स्तर की औद्योगिक शिक्षा–संस्थाएं खोली जायं, जिनमें बुनाई, रंगाई, धुलाई, वस्त्र छपाई, लोहारी, बढ़ईगीरी, मीनाकारी आदि के शिक्षण और प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध हो। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रान्त में कम से कम एक उच्च स्तरीय औद्योगिक शिक्षा महाविद्यालय खोलने की माँग की थी, जिसमें इण्डस्ट्रियल केमिस्ट्री, मैकेनिकल इन्जीनियरिंग, वस्त्रोत्पादन, चीनी परिष्करण आदि के शिक्षण–प्रशिक्षण दिये जा सकें। उन्होंने मैनेजमेन्ट (प्रबन्धशास्त्र) की शिक्षा को भी आवश्यक बताया। पं0 मालवीय जी ने 60ः लघु उद्योगों एवं 40ः भारी उद्योगों के विस्तार को जरूरी बताया, साथ ही देशी लघु उद्योगों को संरक्षण दिये जाने की माँग की, ताकि बेरोजगारी दूर करने में उससे सहायता मिल सके।

मालवीय जी पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा अपने देश में भी चालू की जाय और प्रयोगशाला तथा वर्कशाप में विद्यार्थियों को अपने हाथों में प्रयोग करने का अभयास कराया जाये,

उनमें शिक्षा से प्रेरणा की शक्ति उत्पन्न की जाय। उनके ज्ञान को यथातथ्य तथा जीवनापयोगी बनाया जाय। उनकी धारणा थी कि भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने में तब तक सर्वथा असमर्थ रहेगा, जब तक वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषण का अध्ययन नियमित और अनिवार्य नहीं बताया। (लाल, 1978, पृ0 619)

यह तो स्पष्ट है कि जापानी व्यवसायों की उन्नति वहाँ की व्यवसायिकी शिक्षा–प्रणाली के आधार पर हुई है। यदि भारत को व्यवसायिक उन्नति करनी है और अपनी गणना उन्नतिशील राष्ट्रों में करानी है, तो भारत को भी जापान के ही सदृश शिक्षा–प्रणाली का अवलम्बन करना चाहिए। जापान की व्यवसायिक तथा शिल्प–विषयक शिक्षा इसी आधार पर स्थित है। किन्तु ये दोनों प्रकार की शिक्षाएँ वहाँ साथ ही साथ उन्नत हुई हैं। अतएव मुझे आशा है कि यहाँ भी इनकी साथ ही साथ उन्नति हो सकती है। मेरे साथियों ने जो प्रारम्भि शिक्षा का प्रस्ताव किया है, मैं उसमें उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा का भी समावेश करना चाहता हूँ। हम लोग अपने यहाँ के वर्तमान स्कूलां में चित्रकला, प्रारम्भिक भौतिक रसायन विद्या तथा लकड़ी और लोहे के काम आदि विषयों को प्रारम्भ करके उनकी उपयोगिता बढ़ा सकते हैं। मेरी यह राय है कि शिक्षा–विभाग तथा व्यवसाय और उद्योग विभाग के संचालक लोग परस्पर एकमत होकर, प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च श्रेणी के स्कूलों के पाठ्य विषयों में कुछ ऐसा सुधार करें, जिसमें व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि हो तथा व्यवसायिक शिक्षा–प्रणाली का विकास हो।

14 दिसम्बर 1929 को अपने दीक्षान्त भाषण में शिक्षा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा था,

> "विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ विज्ञान, कला–कौशल और व्यवसाय सम्बन्धी ऐसी शिक्षा दी जाय, जिसमें देशी व्यवसाय तथा घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति हो।"



भारत में प्रचलित शिक्षा–प्रणाली की निरथर्कता के विषय में मालवीय जी ने कहा था,– "हम लोग अंध–विश्वासी की भाँति एक ऐसी शिक्षा–प्रणाली का अनुकरण करते चले आ रहे हैं जिसका निर्माण अन्य जातियों के लिए हुआ था और जिसका उन्हीं लोगों ने बहुत दिन हुए परित्याग कर दिया है, किन्तु हम उसकी अर्थी लिए हुए आज भी उसमें जीवन होने की आशा करते हैं।" उनका दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रीय शिक्षा का विस्तार केवल राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही सम्भव है।

### 3.2.4 शारीरिक विकास का उद्देश्य

मालवीय जी छात्रों के शारीरिक स्वास्थ्य के विकास के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। वे छात्रों को हमेशा सुगठित शरीर एवं उत्तम चरित्र की शिक्षा दिया करते थे। वे चाहते थे कि उनके छात्र विद्याध्ययन के साथ ही अच्छे स्वास्थ्य के स्वामी बनकर विभिन्न खेलों प्रतियोगिता में सबसे आगे रहे। इसलिए उन्होंने सुनिश्चित किया कि विश्वविद्यालय में निवास करने का पहला कर्तव्य यह है कि व्यायाम सुधारें, फिर विद्या पढ़ें। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करें तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं। नित्य सवेरे शाम नियम से व्यायाम करें। शाम को खेले, मैदान में विचारें। जल्दी भोजन करें और और नियम से नित्य अध्ययन करें। धार्मिक उत्सवों, एकादशी कथा, गीता प्रवचन आदि में उपस्थित रहे और विद्वानों का उपदेश ले। अपनी रक्षा आप करें। समय की पाबंदी रखें। व्यर्थ खेल के मैदान एवं स्थल उनकी इसी दूर दृष्टि के परिचायक हैं। जीवन के आत्मिक एवं सांसारिक रहस्यों को सुलझाने में शरीर की महत्ता का उन्होंने प्रतिपादन किया। उनका उद्घोष था कि "शरीर माघं खलु धर्म साधनम्" अर्थात् सारे धार्मिक सम्पूर्णता की प्राप्ति शरीर रूपी साधन के द्वारा ही संभव है। मानव इस शरीर के द्वारा भौतिक और आध्यात्मिक सभी उपलब्धियों का स्वामी बन सकता है। योग हठयोग व्यायाम, खेलकूद आदि

विभिन्न क्रियाओं का इस वैज्ञानिक युग में विशेष महत्व बढ़ गया है। (वर्मा, 1972, पृ0 392)

प्रकृति प्रदत्त मानव शरीर में बहुत सी गुप्त और चमत्कारिक शक्तियों को जाग्रत करने की मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि कुछ शक्तियों का ही परिणाम है जिनमें थोड़ी सी कमी होने पर वह कुछ नहीं कर सकता। एक धावक, पर्वतारोही, तैराक, नाविक सभी को शक्ति की आवश्यकता है। इसमें थोड़ी सी कमी होने पर वह अपने अभियान में असफल हो जाता है। नियमित रूप से शारीरिक क्रियाओं के सम्पादन द्वारा ही एक प्रशिक्षार्थी तैयार होता है। शरीर रूपी साधु के द्वारा हर असम्भव को संभव बनाया जा सकता है। वर्तमान भौतिक जीवन के दमघोटू संत्रास भरे वातावरण से मुक्त होकर सौन्दर्य एवं आनन्द स्वरूप कल्पनातीत नये जीवन में मानव विचरण कर सकता है, बशर्ते वह प्रकृति प्रदत्त सम्पूर्ण क्षमताओं एवं शक्तियों को पहचान कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में निरन्तर क्रियाशील रहे। **(व्यास, 1963, पृ0 98)**

पूज्य मालवीय जी इसी ध्येय की पूर्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। वे चाहते थे कि इस गुरूकुल (आवासी) विश्वविद्यालय से निकलने वाला प्रत्येक विद्यार्थी शरीर से हष्ट–पृष्ट, बलवान, विद्वान, चरित्रवान, बुद्धिमान, देशभक्त और ईश्वर भक्त हो विद्यार्थियों से वे कहते थे–

"दूध पियो कसरत करो, नित्य लेव हरि नाम।
मन लगाय विद्या पढ़ो पूरेंगे सब काम।।"
"सत्येन ब्रहमचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देश भक्त्याऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव।।"

सत्य से, ब्रहमचर्य से, व्यायाम से, विद्या से, देश भक्ति से और आत्म त्याग से सदा आदर के योग्य बनो। मालवीय जी छात्रों के स्वास्थ्य के विषय में सदा प्रयत्नशील रहा करते थे। उनका कहना



था कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। शरीर से दुर्बल व्यक्ति अपना तथा समाज का कल्याण नहीं कर सकता।

मालवीय जी के अनुसार,– "काया रखे धर्म होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, सभी में आरोग्य को ही मुख्य कारण माना गया है। स्वास्थ्य के तीन खम्भे हैं– आहार, विहार और ब्रहमचर्य तीनों का युक्तिपूर्वक सेवन करने से स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। तुम्हारे जीवन को पवित्र, सुखी, नियमयुक्त बनाने के लिए गीता का यह श्लोक बहुत लाभदायक सिद्ध होगा–

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्थ कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।"

सभी बातों में संयम रखों, संयम सीखो, वाणी में संयम, भोजन में संयम रखो अपने सभी कार्यों में शीलवान बनो। शील ही से मनुष्य–मनुष्य बनता है। शीलं परम् भूषणम्। शील ही पुरूष का सबसे उत्तम भूषण है। प्रत्येक विद्यालय में व्यायाम के साधनों का समुचित प्रबन्ध आवश्यक समझते थे। उनके विचार में कतिपय प्राचीन और अर्वाचीन क्रीड़ा और व्यायाम के उपकरण स्वास्थ्य की रक्षा और शरीर की पुष्टि के साथ–साथ मनोरंजन तथा पारस्परिक सद्भाव और सहयोग की क्षमता की वृद्धि के उत्तम साधन भी बन सकते हैं और उनका प्रबन्ध विशेष रूप में वांछनीय है। **(आज, 4 सितम्बर)**

मालवीय जी ने शारीरिक विकास की सार्थकता पर बल देते हुए कहा कि पूर्ण स्वस्थ होने का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें मन की पूर्णता भी सम्मिलित है। तात्पर्य है शरीर के साथ ही साथ अनुशासन एवं चरित्र का धनी होना। आसनों, यौगिक क्रियाओं, खेलों आदि से अंग–प्रत्यंग पर प्रभाव पड़ता है। इसमें व्यक्ति अधिक गतिशील हो जाता है उसमें स्फूर्ति एवं शक्ति की अभिवृद्धि तथा नैतिक गुणों का विकास होता है। यहाँ तक पाया गया कि अच्छे स्वास्थ्य एवं

अनुशासन में जीने वालों में दृढ़ इच्छा और संकल्प की भावना तीव्र होती है। उनमें निर्णय लेने की शक्ति भी अत्यधिक होती है। शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वास्थ्य लोगों को अल्प प्रयाय द्वारा सूक्ष्म शक्तियों का उपयोग करते हुए भी देखा गया है। ऐसे लोगों के लिए विभिन्न कार्यों में बिना किसी कमजोरी अथवा घबराहट महसूस किए भाग लेना तो सामान्य बात है। शरीर से सम्पूर्ण ऊर्जा का सदुपयोग करने की क्षमता ऐसे लोग शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं। सूक्ष्म एवं स्थूल हर प्रकार की साधना में असीम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक क्रियाओं के प्रति सचेष्ट रहते हुए मन–मस्तिष्क को क्रियाशील बनाना चाहिए, अपने में खेल भावना पैदा करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व सामान्य आदमी से थोड़ा हटकर निखरता है। उसमें सहन शक्ति का प्रशंसनीय उत्कर्ष देखा जा सकता है। खेल के मैदान में नियमों का उल्लंघन न करना अनुशासित एवं नियन्त्रण में रहना, प्रतिद्वन्दी की विजय उदारता से स्वीकारना एवं जज अथवा इम्पायर के प्रति मृदु होने जैसे गुणों का विकास प्रत्येक खिलाड़ी में होना चाहिए। मानसिक एवं शारीरिक सर्तकता का बराबर ध्यान रखने पर इन अमूल्य गुणों का विकास होता है। (गुप्ता, 1978, पृष्ठ 184)

मालवीय जी के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का पहला साधन शरीर है, स्वास्थ्य शरीर है, आरोग्य है। साफ जाहिर है कि ये मनुष्य के शरीर को साधन मानते थे, साध्य नहीं। परन्तु साध्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति के लिए जब शरीर पहली बार आवश्यकता है तो शिक्षा द्वारा मनुष्य को स्वास्थ्य की रक्षा की शिक्षा देना आवश्यक है। अतः यह मनुष्य जीवन का उद्देश्य हो या न हो परन्तु शिक्षा का तो सर्वप्रथम उद्देश्य होना चाहिए। मालवीय जी ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि यदि राष्ट्र के निवासियों का शरीर दुर्बल होगा तो राष्ट्र भी दुर्बल होगा।



### 3.2.5 राष्ट्रीय विकास का उद्देश्य

सन् 1907 ई0 में मालवीय जी राष्ट्रीयता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए अपने एक लेख में लिखा है,–

"राष्ट्रीयता उस भाव का नाम है जो कि देश के सम्पूर्ण निवासियों के ह्रदय में देश हित की लालसा के साथ व्याप्त रही हो। जिसके आगे अन्य भावों की श्रेणी नीची ही रहती है।"

राष्ट्रीयता की चर्चा करते हुए उन्होंने पुनः लिखा है,–

"जिस देश में प्रगाढ़ देश भक्ति हो क्या वहाँ पर मतभेद, वर्ण भेद अथवा अन्य भेद फूट डाल सकता है ? कदापि नहीं। प्रगाढ़ देश भक्ति से एकता उत्पन्न होती है, एकता से राष्ट्रीयता का भाव और राष्ट्रीयता के भाव से देश की उन्नति होती है।" विद्यार्थियों को राष्ट्रीयता की इसी भावना से मालवीय जी ओत–प्रोत करना चाहते थे। **(मालवीय, पद्मकान्त, 1962, पृ0 100)**

पं0 मालवीय जी ने आग्रहपूर्वक कहा है कि

''सभी विद्यार्थियों को राष्ट्रीयता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाये। इसके लिए उन्होंने मुख्यतः जापान का उदाहरण प्रस्तुत किया है, जहाँ राष्ट्रीयता की शिक्षा को नितान्तता के साथ शिक्षा का एक आवश्यक अंग ही बना दिया गया है। उनके अनुसार जापान ने सन् 1868 में अपनी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया, जिसमें देश भक्ति की शिक्षा अनिवार्य थी। सन् 1890 में वहाँ शिक्षा के विषय में एक राजकीय आज्ञा द्वारा तत्कालीन सम्राट मिकाडो ने प्रजा को राजभक्ति, पितृभक्ति, देशभक्ति तथा विद्या–प्रेम की शिक्षा देने की घोषण ाा की थी, जिसका फल यह हुआ कि देश भक्ति जापान का धर्म ही हो गया।"

शिक्षा तथा देश भक्ति इन दो गुणों से युक्त जापानियों ने चीन को सन् 1895 में और रूस को सन् 1905 में परास्त किया। जापान को संसार की प्रमुख पाँच शक्तियों में पदासीन हुए बहुत दिन हो गये। यह सब प्रभाव शिक्षा का है, राष्ट्रीय देश भक्ति की शिक्षा का प्रभाव है। भारत वर्ष को भी इसी प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली का आश्रय लेंगें, तो हमें विश्वास और आशा है कि इसी प्रकार के सन्तोष जनक फल प्राप्त होंगे।

सन् 1929 के दीक्षान्त भाषण में उन्होंने स्नातकों को उपदेश दिया था कि वे, "अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने को सदा उद्यत रहे, अपने देशवासियों से प्रेम करें और उनमें एकता की वृद्धि करें। आप से देशवासियों के प्रति स्नेहमयी सेवा की विस्तृत भावना की अपेक्षा है।"

देश–प्रेम और देश भक्ति की इस भावना को पुनर्जागृत करना स्वतंत्रता के पैंसठ वर्षों बाद और भी अधिक आवश्यक लगता है। महामना की दृष्टि में भारतीय मूल्य परंपरा में सेवा भाव धर्म की सर्वोत्कृष्ठ अभिव्यक्ति है। धर्म की इस रूप में व्याख्या करते हुए उन्होंने विश्व विद्यालय की योजना के प्राक्कथन में कहा है,–

> "भारत के प्राचीन धर्म की शिक्षा है कि प्रत्येक मनुष्य अपने को एक बड़ी समष्टि की इकाई समझ कर उसके हित के लिए जीवित रहे और काम करें, लोक कल्याण और लोक संग्रह को परम पुरूषार्थ समझे।"

देश प्रेम की शिक्षा ही राष्ट्र का उद्धार कर सकती है। निःस्वार्थ देश भक्ति ही राष्ट्र की सच्ची और ठोस सेवा कर सकता है। भारतीय राष्ट्रीयता के इसी आदर्श को अपने सम्मुख रखकर जब हम विचार करते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा क्या है? तथा वर्तमान भारत में इसका क्या स्थान है ? तो हमें स्पष्टतः कहना पड़ता है कि जो शिक्षा–पद्धति देश के अंतःमार्ग से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है तथा अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियों, समस्याओं, आवश्यकताओं, आदर्शों तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के अनुरूप विकसित होती है वही राष्ट्रीय शिक्षा है।



विदेशी शिक्षा पद्धति जो हम लोगों के देश में अंग्रेज शासकों द्वारा प्रचलित की गई राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कही जायेगी, क्योंकि इसक लक्ष्य तथा उद्देश्य समस्त राष्ट्र के उत्थान के निमित्त सुयोग्य आदर्शवादी, जिम्मेवार और अनुशासनबद्ध नागरिकों का निर्माण करना नहीं बल्कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए विशाल भारतीय जन समूह के एक अंशमात्र को लिखने पढ़ने भर की शिक्षा देकर अपने शासन सत्र का आधार दृढ़ करना था। 2 फरवरी 1835 ई0 को वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा के विधायक लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा की नई नीति के प्रारम्भ के अवसर पर भारतीय और अरबी साहित्य को निरर्थक, निराधार मूर्खतापूर्ण, गवारू, असत्य और असंगत बनाते हुए बड़े विस्तार के साथ कहा कि हम यह चाहते हैं कि भारतीय केवल रंग में ही भारतीय रहे किन्तु खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार आदि सभी बातों में पूर्णतः अंग्रेज बन जाएं।" मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार और तत्कालीन हिन्दू शिक्षा प्रणाली का बहिष्कार करते हुए अपने पिता के पास पत्र (1835) में लिखा था,

> "अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव हिन्दुओं पर बहुत अच्छा पड़ रहा है और जो भी हिन्दू अंग्रेजी पढ़ते हैं, वे अपने धर्म और समाज के भक्त नहीं रह जाते। उनमें कुछ तो दिखावे भर के लिए हिन्दू रह जाते हैं, कुछ धर्म विरोधी बन जाते हैं और कुछ ईसाई हो जाते हैं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हमारी यह शिक्षा योजना चलायी जाती रही, तो तीस वर्षों के अन्दर ही बंगाल के उच्च वर्गों में एक भी मूर्तिपरक नहीं बचा रहेगा।" **(वर्मा, 1972, पृ0 388)**

राष्ट्रीय शिक्षा पर बल देते हुए मालवीय जी ने कहा था,–

"देश में ऐसी शिक्षा–प्रणाली विकसित की जानी चाहिए, जिसमें कला, धर्म, दर्शन तथा विज्ञान और प्राविधिकी की शिक्षा का समान रूप से विकास हो सके। उक्त शिक्षा व्यवस्था में उन्होंने राष्ट्रीयता के विकास की शिक्षा पर बल देते हुए कहा था कि सभी विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीयता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। जिससे अन्य देशों की भाँति, भारतीय राष्ट्रीय चरित्र का विकास हो सके तथा देश में एकता स्थापित हो कर इस धर्म, दर्शन, कला, साहित्य के माध्यम से उन्होंने कांशी हिन्दू विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था की थी। **(द्विवेदी, 1981, पृ0 56)**

मालवीय जी के अनुसार,–

"किसी देश के शासन में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न देश की सबसे बड़ी समस्या है। इसका विभिन्न विभागों में श्रेष्ठ तथा सुचारू रूप से केवल राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही विस्तार हो सकता है। राष्ट्रीय सरकार का प्रथम कार्य है कि वे देश के प्रमुख शिक्षा आचार्यों की एक सभा करें और उसमें इस प्रश्न पर विचार हो कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का किस प्रकार अवलम्बन किया जाय। इस सभा को चाहिए कि जनता की शिक्षा के विषय में अन्य राष्ट्रों के अनुभव से लाभ उठाये और एक ऐसे बुद्धि–संगत कार्यक्रम को स्वीकृत करें, जो देश के विभिन्न श्रेणियों की जनता को आवश्यकता के अनुकूल हो, तभी भारतीय मास्तिष्क का योग्यता के अनुसार श्रेष्ठतम परीक्षा–फल दिखला सकें।

महामना के अनुसार राष्ट्रीय जागरण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की अतिशय आवश्यक है कि उनका तर्क है कि,– "देश में उच्च शिक्षा के विकास के साथ राष्ट्रीयता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए, जिसमें अन्य देशों की भाँति क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद



तथा बहुधर्मवाद वाली भारत देश में सबसे ऊपर राष्ट्रीय चरित्र का विकास हो और देश में एकता स्थापित हो।" जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, जापान आदि। अन्याय सभ्य देशों ने अपने स्कूलों में देश–भक्ति की शिक्षा देकर अपनी राष्ट्रीय शक्ति तथा दृढ़ता का निर्माण किया है।

समग्र राष्ट्र के नवनिर्माण की अजस्र धारा का सतत् प्रवहमान रहना परमवश्यक है। लोकप्रिय कवियित्री महादेवी जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छाछठवें समापनोत्सव के अवसर पर कहा था,–

"अतीत के उपलब्ध जीवन मूल्यों को वर्तमान से जोड़ने तथा वर्तमान की समस्याओं के आलोक में भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए समय खण्डों के समुद्र पर सेतु बनाने का कार्य शिक्षा ही करती है। इस सेतु की उपेक्षा में न अतीत की उपलब्धियों का सम्प्रेषण वर्तमान में सम्भव होता है और न भविष्य के किसी स्वप्न की रूपरेखा का निर्माण हो सकता है।"

महादेवी जी के ये यद्गार महामना की भावना के सर्वथा अनुरूप और उनके सिद्धान्तों के पोषक है।

### 3.2.6 सांस्कृतिक विकास

मालवीय जी को अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक देन पर गर्व था। वे सदैव चाहते थे कि भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, दर्शन तथा अन्य भारतीय विद्याओं के अध्ययन–अध्यापन तथा अनुसंधान का समुचित प्रबन्ध हो तथा सब विद्यार्थियों को उनकी रूप रेखा की जानकारी दी जाये। उनकी अवधारणा थी कि वह शिक्षा–पद्धति, अपूर्ण ही नहीं, निरर्थक और हानिकारक है जिसके द्वारा नवयुवक को अपने देश और समाज की बौद्धिक समुद्धि की ठीक–ठीक जानकारी न हो सके। उनके विचार में वह व्यक्ति क्या शिक्षित है ? जिसका जीवन अपने पूर्वजों के सद्गुणों से अनुप्रमाण्ति नहीं, जिसे अपने पूर्वजों की

महत्वपूर्ण देन का कोई ज्ञान नहीं, जिसे अपने देश के इतिहास की सही–सही जानकारी नहीं, जिसमें अपने जीवन को जनता में आत्मसात करने की क्षमता नहीं। यद्यपि मालवीय जी भारतीय वाङ्मय का अध्ययन–अध्यापन, पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा और पुष्टि सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण, उनकी बौद्धिक मान्यताएं व्यापक और उदार थीं। वे ज्ञान को किसी विशिष्ट जाति या देश की बपौती नहीं समझते थे। वे यह कभी नहीं मानते थे कि हमारे पास सब कुछ है, हमें दूसरों से कुछ लेना नहीं है। वे स्वीकार करते थे कि हमारे पूर्वजों की तरह दूसरे देश के विद्वानों ने भी अपनी प्रतिभा और योग्यता से संसार को अलंकृत किया है। जब विद्वानों का आदर तथा ज्ञान का आदान–प्रदान वे मानव प्रगति और राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। वे दूसरे देशों के विद्वानों के युक्ति–युक्त समाजपयोगी विचारों को ग्रहण करने को सदा तैयार रहते थे। वे मनु, भीष्म, वशिष्ठ, शुक्र आदि विद्वानों के इस विचार से सहमत थे कि हमें अपने पूर्वजों और गुरूओं के सद्गुणों को ग्रहण करते हुए सब विद्वानों के युक्ति–युक्त विचारों को, शुभ ज्ञान को विनय पूर्वक स्वीकार करना चाहिए। उनका अध्ययन–अध्यापन करना चाहिए। **(लाल, 1978, पृ0 618)**

## 3.3 शिक्षा का स्वरूप

मालवीय जी के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित स्वरूप थे।

1. प्राथमिक शिक्षा
2. माध्यमिक शिक्षा
3. विश्वविद्यालयी शिक्षा
4. व्यवसायिक शिक्षा
5. कृषि शिक्षा
6. स्त्री शिक्षा।



### 3.3.1 प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा को मालवीय जी बड़ा महत्व प्रदान करते थे। उनके विचार से प्राथमिक शिक्षा अन्य सभी प्रकार की उच्च शिक्षा की नींव का कार्य करती है। विश्वविद्यालय की शिक्षा की उत्तमता द्वितीय श्रेणी की शिक्षा की उत्तमता पर निर्भर है। यदि आप पहले की उन्नति चाहते हैं तो दूसरों की उन्नति अवश्यम्भावी है। परन्तु आप ऐसा तभी कर सकते हैं जब आप प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था किसी विस्तृत तथा प्रौढ़ आधार पर करें। विश्वविद्यालयों की तुलना हम उन वृक्षों से कर सकते हैं जिनकी जड़े प्रारम्भिक पाठशालाओं की गहराई तक पहुँचती हैं और जो अपना रस तथा शक्ति द्वितीय श्रेणी के स्कूलों से प्राप्त करते हैं। जहाँ ये दोनों ही न्यून तथा दोष–युक्त हों, जहाँ विद्यार्थियों के लिए शिल्प आदि कलाओं की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न हो, और उधर उनका झुकाव ही न हो, वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को बाध्य होकर एक ही प्रकार से ऐसे प्रत्येक विषय लेने पड़ते हैं जो उन्हें तुच्छ क्लर्की के पदों की अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए अनुपयुक्त बना देते हैं। विश्वविद्यालयों के कार्य में बाधा पड़ने का एकमात्र कारण यही है कि वे ऐसे विद्यार्थियों को भर्ती करते हैं, जो स्वभाव से ही विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिए अयोग्य हैं तथा उनमें से बहुत से अन्य व्यवसायों में अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इस वर्तमान परिस्थिति में विश्वविद्यालयों से यथेच्छ उच्च प्रकार की श्रेष्ठता की आशा नही की जा सकती।

विश्वविद्यालयों में भर्ती, उनकी शिक्षा तथा परीक्षाओं में अत्यन्त आवश्यक उच्च कोटि की श्रेष्ठता के निर्वाह के लिए, राष्ट्रीय प्रणाली के आधार पर प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्कूलों में सर्वसाधारण के लिए निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये और साथ ही साथ उनमें उत्तम शिल्पादि कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध रखा जाय। वर्तमान असन्तोष जनक परिस्थिति को सुधारने का एकमात्र यही उपाय है।

इसक अतिरिक्त योग्यताहीन विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय की शिक्षा देना व्यर्थ है।

देश की आर्थिक विकास की कुंजी प्राथमिक शिक्षा में निहित है। इसी कारण से मालवीय जी सार्वभौम और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का समर्थन करत थे। प्राथमिक शिक्षा से कई समस्याओं जैसे–अज्ञानता, निरक्षरता, अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता जैसे समस्याओं का निराकरण हो सकता है।

पं0 मालवीय जी प्रारम्भिक एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध सरकार का एक प्रमुख कर्तव्य समझते थे, उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क, अनिवार्य एवं सार्वभौमिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। वे प्रारम्भिक शिक्षा को सब सुधारों का मूल मानते थे। सन् 1911 के भारतीय विद्यान कौंसिल में उन्होंने गोखले द्वारा प्रस्तावित 'अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक' का जोरदार समर्थन किया और कहा कि कम से कम 10 वर्ष तक के समस्त बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि,–

> "प्रत्येक सभ्य देश ने यह स्वीकार किया है कि अनिवार्य प्रणाली एक ऐसा सुगम मार्ग है जिसके द्वारा सार्वजनिक शिक्षा तक पहुँचा जा सकता है। इसके बिना किसी देश ने न तो आज तक सफलता प्राप्त की है और न वह हमें प्राप्त हो सकती है। वे प्रारम्भिक शिक्षा को विश्वविद्यालयी शिक्षा की बुनियाद समझते थे।"

महामना मालवीय जी के अनुसार,–

> "प्रारम्भिक अवस्था में हमें केवल विद्यार्थियों को पढ़ाने लिखाने, जोड़ने की शिक्षा देकर चुप नहीं रह जाना चाहिए। संसार की सर्वतोमुखी प्रगति को देखते हुए शिक्षा–व्यवस्था का यह क्रम सर्वथा अनुपयुक्त है। अपने देश में प्रारम्भिक अवस्था में प्रारम्भिक विज्ञान तथा साधारण रोचक शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए।"



शिक्षा के अनिवार्यता पर बल डालते हुए मालवीय जी ने कहा था,– "सरकार का क्या यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक वयस्क बालक को शिक्षित बनावे। राजा तथा प्रजा दोनों के हितों की रक्षा के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक बालक और बालिका शिक्षा प्राप्त करें, और यदि इस लक्ष्य की पूर्ति करनी है तो सरकार को इसके लिए प्रत्येक अभिभावकों की स्वेच्छा पर यह नहीं छोड़ना चाहिए कि वे अपने बालकों को स्कूल भेंजे या न भेंजे। बालिकाओं के सम्बन्ध में अवश्य अभी वर्तमान में कोई बाध्य नियम नहीं बनाना चाहिए परन्तु यदि बालकों के पक्ष में भी स्वेच्छा नीति का अवलम्बन किया जाए तो सार्वजनिक शिक्षा का प्रचार नहीं हो सकता। कुछ संख्या में शिक्षा अवश्य प्रचारित होगी, परन्तु बहुसंख्यक जनता अशिक्षित ही रहेगी। प्रत्येक सभ्य देश ने यह स्वीकार किया है कि अनिवार्य–प्रणाली ही एक ऐसा सुगम मार्ग है, जिसके द्वारा सार्वजनिक शिक्षा के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। इसके बिना किसी देश ने आज तक न सफलता प्राप्त की है और न वह हमें प्राप्त हो सकती है।"

28 फरवरी सन् 1917 को श्री निवास ने भारत सरकार से सिफारिश की कि वह शीघ्र ही एक ऐसी योजना तैयार करे और मंजूर करें जिसके सहारे 15 वर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा सार्वजनिक और निःशुल्क हो जाये और युद्ध समाप्ति के बाद वह योजना चालू कर दी जाय। मालवीय जी और बहुत से अन्य सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। सरकार की ओर से पुनः उसका विरोध हुआ।

सन् 1918 में बी0एन0 शर्मा ने प्रस्ताव किया कि यदि सारा भू–राजस्व प्रान्त को हस्तानान्तरित नहीं किया जाता है तो निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का सारा खर्च भारत सरकार दे। मालवीय जी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि,–

> "उस समय से जब कि सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार के महत्व को स्वीकार किया है। सरकार के राजस्व और खर्चे

में बहुत वृद्धि हुई है। प्रशासन और सेना पर कहीं अधिक धन खर्च किया जा रहा है, पर शिक्षा पर जितना चाहिए उतना खर्च नहीं हो रहा है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नितांत आवश्यक है।" **(प्रोसोडिंग गवर्नर जनरल की कौंसिल, सन् 1918, जि0 65, पृ0 465–66)**

## 3.3.2 माध्यमिक शिक्षा

मालवीय जी के दृष्टिकोण में माध्यमिक शिक्षा का कम महत्व नहीं था। उनके विचार से माध्यमिक शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा और विश्वविद्यालयी शिक्षा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। माध्यमिक शिक्षा की सफलता पर ही विश्वविद्यालयी शिक्षा की सफलता निर्भर करती है। विश्वविद्यालय के लिए अच्छे विद्यार्थियों को प्रापत करने के लिए और जीवन के लिए अच्छे नागरिक पैदा करने के लिए माधमिक शिक्षा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। मालवीय जी के विचार से माध्यमिक शिक्षा का तात्पर्य हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट की शिक्षा से है जिसमें 14 वर्ष से लेकर 18 वर्ष के छात्रों की शिक्षा सम्मिलित होती है। उनका विचार था कि –

''माध्यमिक शिक्षा इतनी प्रभावशाली बनाई जाये कि यहाँ से निकले हुए विद्यार्थी विश्वविद्यालय के भाषणों को अच्छी तरह समझ सकें और यदि वे आगे शिक्षा न जारी रख सके तो अपनी आजीविका आसानी से अर्जित कर सकें। उनकी इच्छी थी कि प्रत्येक जिले में इण्टरमीडिएट कॉलेज अवश्य खोले जाय। वे माध्यमिक अंग्रेजी विद्यालयों की संख्या कम करने के पक्ष में नहीं थे। उनके विचार से ये अंग्रेजी विद्यालय उन टिमटिमाते दीपों की तरह हैं जिससे भारतीय जनता प्रकाश पाती है। **(इंडियन लेजिस्लेटिव कौंसिल, सन् 1914, जि0 52, पृ0 1032)**



माध्यमिक शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मालवीय जी ने **1907 ई0 में प्रान्तीय कौंसिल के भाषण** में कहा,–

"हर प्रान्त में कम से कम एक शिक्षाणालय यांत्रिक, शिल्प शिक्षा देने के लिए, और प्रत्येक जिले में एक विद्यालय हस्तशिल्प की शिक्षा देने के लिए अवश्य होना चाहिए। माध्यमिक शिल्प–विद्यालय प्रत्येक जिले में एक विद्यालय हस्तशिल्प की शिक्षा देने के लिए अवश्य होना चाहिए। माध्यमिक शिल्प–विद्यालय प्रत्येक जिले में होना चाहिए, जहाँ बुनाई, रंगाई की ............. द्वारा धुलाई, छींट की छपाई, लुहारी, बढ़ईगिरी, विद्यालयों में प्रधान मिस्त्री और सहकारी मिस्त्री की भी शिक्षा दी जाये। बुनाई के विद्यालयों के साथ कारखानें भी होने चाहिए, जिनके द्वारा समुन्नत करघों और उनसे मिलते–जुलते करघों की शिक्षा दी जाये। संभवतः समस्त देशों में भारतवर्ष ही वह प्रथम देश है, जिसने सर्वप्रथम बुनाई में निपुणता प्राप्त की है। शिक्षा कार्य उन हस्त शिल्पों तक सीमित होना चाहिए, जो उन जिलों में प्रधान शिल्प–व्यवस्था है। टोक्यों की तरह उच्च कोटि के शिल्प–विद्यालय की इन प्रान्तों में अत्यधिक और अनिवार्य आवश्यकता है।"

माध्यमिक शिक्षा के हस्त संबंधी विद्यालयों को स्थान देने से घरेलू जीवन के लिए अधिक परिश्रमी और अधिक व्यवहार–कुशल व्यक्ति तथा व्यापार में अधिकक दक्ष व्यक्ति प्राप्त होंगे, परन्तु इसलिए कि इस शिक्षा से अत्यन्त विभिन्न भौतिक चरित्र के व्यक्ति प्राप्त होंगे। प्रयोगशाला सम्बन्धी कार्य और दुकानदारी के कार्य सूक्ष्म दर्शन का अभ्यास बढ़ेगा, गम्भीरता और ओछेपन का भेद मालूम होगा, प्रकृति की गहनता के लिए अन्तर्दृष्टि होगी और सच्ची घटनाओं के सम्बन्ध में मौखिक प्रमाणों की अपर्याप्तता जो एक बार मस्तिष्क के सामने आने से जीवन पंक्ति ज्यों के त्यों बनी रहती है, दूर हो जायेगी। इससे

यथार्थता, निष्कपटता, आत्मनिर्भरता का विश्वास उत्पन्न होता है। एक प्रकार से यह शिक्षण–पद्धति विद्यार्थियों की अवस्था के अनुरूप स्वयंजात रूचि की सामग्री प्रदान करती है। ये उन्हें तल्लीन करती है और इनके मस्तिष्क पर स्थायी गंभीर प्रभाव डालती है।

माध्यमिक शिक्षा के ऊपर प्रकाश डालते हुए मालवीय ने कहा कि वर्तमान में समय में

द्वितीय श्रेणी के स्कूलों की संख्या बहुत कम है और उनमें दी हुई शिक्षा का ढंग भी अपर्याप्त है। इनमें दी जाने वाली सार्वजनिक शिक्षा की उत्तमता भी अन्य देशों की शिक्षा से निम्न कोटि की है और इससे व्यवहारिक लाभ की कुछ भी प्राप्ति नहीं हो सकती। ये इस बात में भी नीचे है कि इनमें केवल साधारण ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। शिल्प व कला सम्बन्धी शिक्षा पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता यहाँ पर कृषि सम्बन्धी, व्यापारिक, कला व शिल्प सम्बन्धी तथा व्यवसाय सम्बन्धी स्कूल नाम मात्र के हैं। महामना मालवीय जी ने कहा था कि –

> ''जब तक इस देश में भरपूर मात्रा में माध्यमिक विद्यालयों का विकास नहीं होगा तब तक विश्वविद्यालय शिक्षा का भी विकास संभव नहीं है अतएव विश्वविद्यालयों में भर्ती उनकी शिक्षा तथा परीक्षाओं में उच्च कोटि की श्रेष्ठता के निर्वाह के लिए राष्ट्रीय प्रणाली के आधार पर प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्कूलों में सर्वसाधारण के लिए निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये और साथ ही साथ उनमें उत्तम शिल्पादि कलाओं की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाये, वर्तमान असंतोष जनक परिस्थिति को सुधारने का एक मात्र उपाय यही है। **(चतुर्वेदी, 1980, पृ0 58)**

सन् 1914 के विधान कौंसिल में माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का आग्रह करते हुए मालवीय जी ने कहा था कि,–



> "इण्टरमीडिएट कक्षा की दो वर्ष पढ़ाई की व्यवस्था सब हाईस्कूलों में की जाये और बी0ए0 की शिक्षा की अवधि को दो वर्ष के बजाय तीन वर्ष कर दी जाये।" **(दृष्टव्य–प्रोसीडिंग, कौंसिल विधायिका, 1914, जि0 52, पु0 1032)**

### 3.3.3 विश्वविद्यालीय शिक्षा

विश्वविद्यालीय शिक्षा के बारे में मालवीय जी के विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। क्योंकि उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना तथा उनको चलाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त था। मालवीय जी लार्ड कर्जन के इस विचार से पूर्ण सहमत थे कि विश्वविद्यालय ऐसा स्वभाव है, जहाँ ज्ञान पिपासुओं को हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है। जहाँ शिक्षा का अच्छे कार्यों में प्रयोग होता है, जहाँ पर ज्ञान का सदा प्रचार होता रहता है। विश्वविद्यालय में उच्च विचार वाले व्यक्तियों का निर्माण होता है। जहाँ प्रशिक्षित होकर व्यक्ति ज्ञान के महत्व को भली–भाँति समझने लगता है, जहाँ ज्ञान का ज्ञान के लिए महत्व किया जाता है। मालवीय जी के अनुसार विश्वविद्यालय ऐसा स्थान है जहाँ पर प्रतिभाओं की खोज तथा विकास होता है। जहाँ वैज्ञानिक ज्ञान पर शोध होता है और जहाँ विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण मिलता है तथा व्यवसायीकरण का मूल्यांकन होता है। मालवीय जी कर्जन के इन विचारों से तो सहमत थे किन्तु विश्वविद्यालय को वह सरकार के एजेन्सी के रूप में नहीं देखना चाहते थे बल्कि वह उसे स्वायत्त संस्था के रूप में विकसित करना चाहते थे। शिक्षा के क्षेत्र में उनका विश्वास था कि स्वशासन ही सर्वोत्तम व्यवस्था है। (लीडर 18 जनवरी 1916) विश्वविद्यालय की स्वायत्ता के बारे में अपना विचार प्रकट करते हुए मालवीय जी ने कहा है कि शिक्षा के अधिकारियों के ऊपर कठोर नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। शिक्षा के अधिकारियों को अपने मन से अच्छे कार्यों को करने के लिए उचित स्वतंत्रता होनी चाहिए। (लीडर, 18 जनवरी 1916)

मालवीय जी के विचार से :—

"प्रत्येक सभ्य देश में अंग मानी जाती है और शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रधान अंग माना जाती है और यदि पाश्चात्य देशों के विश्वद्यिालयों के शिक्षा—व्यय की तुलना हमारे देश के विश्वविद्यालयों से की जाये तो ज्ञात हो जायेगा कि इस विषय में अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा हम कितने पीछे हैं और हमें इस कमी की पूर्ति के लिए कितने उत्साह की आवश्यकता है। हमारे जितने भी विश्वविद्यालय हैं वे मानो दरिद्रता तथा आपत्तियों से अक्रान्त भारत भूमि के अज्ञान रूपी अन्धकार के विनाशार्थ उतने ही बिजलीघर हैं। ये विश्वविद्यालय जितनी ही अधिक संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों की देश सेवा के लिए भेजेंगे उतनी ही अधिक अविद्या रूपी शत्रु से संग्राम करने वाली राष्ट्रीय सेना की शक्ति बढ़ेगी और उतना ही देश में ज्ञान रूपी बाल—रवि का प्रकाश फैलेगा। अतएव प्रत्येक भारतप्रेमी को देश के विश्वविद्यालय की शिक्षा की वृद्धि देखकर प्रसन्न होना चाहिए।"

महामना मालवीय जी ने यह अनुभव किया कि विश्वविद्यालय केवल एक विषय में विद्यार्थियों की परीक्षा लेते थे और साथ ही उनको उस विषय को नियमित रूप से पढ़ने के लिए बाध्य भी नहीं करते थे, इससे भारतीय मस्तिष्क के समुचित विकास में कुछ दोष रह जाते थे। स्मरण शक्ति तो तीव्र हो जाती थी, परन्तु मस्तिष्क का सर्वांग विकास नहीं हो सकता था। वे वास्तविक सत्य का निरीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक विवेचना नहीं कर पाते थे।

इसके अतिरिक्त केवल परीक्षण विश्वविद्यालयों में चरित्र का समुचित विकास नहीं हो सकता था और वास्तव में चरित्र—गठन का महत्व व्यक्तिगत तथा जातीय दोनों दृष्टियों से मस्तिष्क के विकास से कहीं अधिक बढ़कर है। इन्हीं सब विचारों से यह निर्णय हुआ कि



भारत में भी पाश्चात्य राष्ट्रों के ढंग पर शिक्षण तथा गुरूकुल प्रणाली से युक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाये।

वे विश्वविद्यालयों को विश्व की सारी विधाओं का ऐसा उच्च स्तरीय शिक्षा केन्द्र बनाना चाहते थे कि वहाँ विभिन्न विषयों के विद्यार्थी एक साथ रहते हुए पारस्परिक सम्पर्क और विचार विमर्श द्वारा तथा विशेषज्ञों के सुबोध भाषणों द्वारा अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का सरल ज्ञान प्राप्त करें। पाच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन करे, और जहाँ सम्भव हो वहाँ प्रयोगशाला में अपने विचारों की सच्चाई की परख करें, एवं प्रयोगात्मक ढंग से अपने ज्ञान को वास्तविक अऔर ठोस बनायें, तथा उन्हें व्यवहार में लाने की अपने में क्षमता पैदा करे। (लाल, 1978, पृ0 623)

मालवीय जी ने 1903 के मद्रास अधिवेशन में अपने भाषण में कहा था कि —

''हमें ऐसे विश्वविद्यालय की आवश्यकता है जहाँ उच्च से उच्च शिक्षा देने के साधन हो। बुद्धि के विकास के लिए साहित्य के गम्भीर अध्ययन के लिए जतथा व्यवसायिक आदर्श को उच्च बनाने के लिए जहाँ प्रत्येक प्रकार का साधन उपस्थित हो, तथा जहाँ पर विद्वान सुस्थिर शान्तिमय वातावरण में रह सकें, जैसा कि सच्चे विद्या केन्द्रों में ही मिलता है।''

एक बड़े अमेरिकन लेखक ने विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में कहा है कि "एक बड़ा विश्वविद्यालय शिक्षा का सर्वोत्तम स्थान, अनुसन्धान की सबसे सुन्दर रूचिपूर्ण निर्जन स्थान होना चाहिए।" निस्सन्देह यह सत्य है किन्तु केवल यह अधूरा सत्य है। जिन विश्वविद्यालयों में अधिक संख्या में अनुसंधान कर्ताओं, पण्डितों, विचारकों और दार्शनिकों के लिए सब तरह के प्रचुर साधन प्रस्तुत हैं तथा जिनकी बुद्धि और विद्वता की अपने युग में ख्याति हो, वे देश की शान्ति और

सुस्थिरता की रक्षा के साधन होंगे। केवल उन्हीं के लिए नहीं, जो उस विद्यापीठ में पलते हैं, बल्कि सभी के लिए जो उसके प्रभाव में आते हैं। किसी देश के सर्वोत्तम मनस्वी व्यक्तियों का समाज, जो शिक्षा के आदान–प्रदान में व्यस्त, प्रकृति विज्ञान के अध्ययन, साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना, गणित के आश्चर्यकारी सिद्धान्तों के परिणाम, ऐतिहासिक सत्य की खोज, मानवी सभ्यता के विकास और धार्मिक विश्वास के आधार आदि के गम्भीर अध्ययन में संलग्न है, वे देश में एकदम शान्त वातावरण पैदा करने वाले होंगे, और जीवन के तत्व का प्रसार करेंगे, जिसकी जरूरत हमारे देशवासियों के लिए इतनी अधिक है। ऐसे समय जब एक ओर निराशावाद का करूण क्रन्दन और दूसरी ओर आशावाद का आनन्दायक, किन्तु प्रपंची सुख स्वप्न उनको मध्यम मार्ग से विचलित कर देते हैं, विवेक से सत्य का निश्चय कर आशा और उत्साह के साथ में कल्याण मार्ग की ओर बढ़ने में सफल होगें।"

### 3.3.4 व्यावसायिक शिक्षा

मालवीय जी के अनुसार जो दोष हमारे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के विरूद्ध आरोपित किया जाता है, वह यह है कि वे इतनी अधिक संख्या में ग्रेजुएट निकालते हैं कि उन्हें काम नहीं मिलता। इसका प्रत्यक्ष कारण यही है कि हमारे विश्वविद्यालयों में अधिक संख्या में भिन्न–भिन्न विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती, जिससे वे अपनी योग्यता के अनुसार जीविका–उपार्जन के मार्ग खोज सकें। कला अथवा साधारण विज्ञान में उपाधि प्राप्त करने वाले विद्यार्थी केवल एक शिक्षक या राज्य कर्मचारी के पद के योग्य रहते हैं। व्यवसायिक अथवा शिल्प–सम्बन्धी शिक्षा के अभाव से बहुत से विद्यार्थियों को बाध्य होकर वकालत की ओर झुकना पड़ता है, जिसका फल यह होता है कि आवश्यकता से अधिक भीड़ होने के कारण इस विभाग



में उन्हें जीवकोपार्जन के लिए अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, और अन्त में हतोत्साहित होना पड़ता है। इसका एक मात्र उपाय यही है कि व्यापार, कृषि, शिल्पादि कला, इंजीनियरिंग तथा प्रयोगात्मक रसायन में शुद्ध ढंग पर भरपूर शिक्षा का विकास हो।

लोगों की यह धारणा थी कि एक व्यापारी के लिए अधिक उच्च शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु आज यह अनुभव हो रहा है कि किसी भी विस्तृत व्यवसाय का संचालन केवल उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति द्वारा ही हो सकता है। परन्तु जबसे व्यवसायिक तथा व्यापारिक युग का आरम्भ हुआ है, तब से तो वकालत तथा राजनीति के विशेषज्ञ भी अधिक संख्या में व्यापार को ही अपनाने लगे हैं। और महामना मालवीय जी को यह पूर्ण विश्वास था कि यदि प्रत्येक बड़े प्रान्त में एक व्यापारिक कॉलज की स्थापना कर दी जाये तो हमारे बहुत से युवक वकील, जो इस पेशे से अपनी गुजर नहीं कर सकते, प्रसन्न होकर इस प्रकार की शिक्षा से लाभ उठाने तथा देश के व्यवसाय और वाणिज्य की वृद्धि करने में पूर्ण सहायक होंगे।

महामना मालवीय जी चाहते थे कि व्यापारिक शिक्षा के कॉलज स्थापित करने के लिए आदेश दें और उनकी विशेष रूप से आर्थिक सहायता करें। इस विषय पर सन् 1911 ई0 में उन्होंने लिखा था,–

> "व्यापारिक शिक्षा के महत्व की ओर पाश्चात्य देशों में पूर्ण ध्यान दिया जाता है। जो व्यवसाय में प्रवेश करने वाले नवयुवकों की प्रधान शिक्षा है, तथा जो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उन्नति का एक मुख्य साधन है।''

यदि देश के व्यापार तथा व्यावसाय की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहते थे, तो अपने में उच्च कोटि की व्यवसाय बुद्धि तथा चातुर्य का विकास कीजिए और विश्वद्यिालय की इस शिक्षा के योग्य बनिए। विश्वविद्यालय को व्यापारिक शिक्षा, विभाग का यह कार्य विद्यार्थियों

की विचार शक्ति को विकसित तथा परिष्कृत करके करना है। सर जॉन हेवेट् ने कहा था कि,–

> "हमें यह एक स्वयं सिद्ध तथ्य प्रतीत होता है कि शिक्षा तथा उद्योग और व्यापार की उन्नति में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

निःसन्देह भारत में इस बात का अनुभव नहीं किया गया, और इसके तत्सम्बन्धी पिछड़ेपन का मूल कारण शिक्षा का अभाव ही है। महामना मालवीय जी सर जॉन हेवेट् के उपर्युक्त मत से पूर्णतः सहमत थे। 14 सितम्बर सन् 1929 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बारहवे उपाधि वितरण महोत्सव में अपने भाषण में उन्होंने कहा,–

> "शिक्षा को ऐसा क्रियात्मक रूप देने की आवश्यकता है जिसकी माँग सदैव बनी रहे और इस माँग की उन्नति स्थिरचित्त होकर की जाये। सरकार तथा विश्वविद्यालयों को इस बात में सहयोग करना चाहिए कि वे नवयुवकों को उपयुक्त शुद्ध ढंग की शिक्षा दे, और उनके लिए जीवन निर्वाह की वृत्तियों का प्रबन्ध करे। हमारे विद्यार्थियों पर यह दोषारोपण किया जाता है कि उनमें से अधिकतर कानून पढ़ते हैं, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें उनका दोष नहीं, बल्कि उनका यह अभाग्य है कि उन्हें ऐसा करना पड़ता है, अन्यथा उनके लिए दूसरा कौन सा मार्ग खुला है।"

### 3.3.5 कृषि शिक्षा

महामना मालवीय जी का सपना था कि आने वाले वर्षों में बढ़ती हुई आबादी के भरण–पोषण के लिए, कृषि एवं दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर कृषि का विकास करना बहुत ही आवश्यक होगा। महामना मालवीय जी ने सरकार से यह निवेदन किया कि जापान की तरह संयुक्त प्रान्त में भी कृषि शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो। उन्होंने कहा,–



> "जापान में 403 प्रारम्भिक कृषि स्कूल हैं, जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों को खेती की

प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। इसी तरह वहाँ 73 माध्यमिक कृषि संस्थाएं हैं जिनमें मध्यम श्रेणी के भावी कृषिकों को कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक और व्यवहारिक शिक्षा दी जाती है। मालवीय जी ने माँग की कि जापान की इन प्रारम्भिक और माध्यमिक कृषि संस्थाओं की तरह काफी संख्या में कृषि शिक्षा संस्थाएं सारे देश में खोली जाये। वे यह भी चाहते थे कि प्रत्येक प्रान्त में टोकियों के कृषि महाविद्यालय की तरह के महाविद्यालय खोले जाये, जिनमें योग्य विद्यार्थियों को कृषि विज्ञान की उच्च स्तरीय शिक्षा दी जाये, बड़े पैमाने पर खेती से सम्बन्धित समस्याओं पर अनुसंधान किया जाये तथा कृषि शिक्षक तैयार किये जाय। उनकी इच्छा थी कि कृषि महाविद्यालय, विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हो और कृषि विशेषज्ञ तथा दूसरे विषय विशेषज्ञ मिलकर एक साथ काम करें। **(प्रान्तीय कौंसिल में मालवीय जी का भाषण, 1907)**

महामना मालवीय जी के अनुसार,– "यदि कृषि सम्बन्धी शिक्षा की वैज्ञानिक पद्धति की व्यवस्था की जाये तो भारतीय किसान भी जापान, अमेरिका और यूरोप के अपने किसान भाईयों के समान ही सुसम्पन्न सभ्य सम्पादन के योग्य बन सकेंगे तथा वर्तमान समय की अपेक्षा भूमि से अधिक उर्वरत्व शक्ति लाने में समर्थ हो सकेंगे। अब अवसर आ गया है कि ऐसी पद्धति का प्रारम्भ हो। वे इस बात से अच्छी तरह सहमत थे कि सर्वांगपूर्ण कृषि सभी व्यापार तथा व्यवसाय की जननी है तथा राज्य की आर्थिक उन्नति का कृषि व्यवसाय की उन्नति से गहरा सम्बन्ध है। वे पुराने देशी उद्योगों के विकास के साथ–साथ अत्याधुनिक उपकरणों से समृद्धि बड़े–बड़े उद्योगों के विस्तार के भी पक्ष में थे। कृषि शिक्षा के विकास के लिए मालवीय

जी ने एक विस्तृत योजना औद्योगिक कमीशन (1918) के समक्ष पेश की। प्रतिवेदन में उन्होंने लिखा था कि–

> "औद्योगिक कमीशन कृषि शिक्षा को पहले मिडिल स्कूल स्तर पर संचालित करने की स्वीकृत प्रदान करे और उसके विस्तार स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम तक करे तथा इसके अतिरिक्त स्तनातक स्तर के विज्ञान के पाठ्यक्रम में कृषि विज्ञान को ऐच्छिक विषय के रूप में स्थान प्रदान किया जाये। उन्होंने आगे यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक जिले में और बाद में प्रत्येक तहसील में बढ़ईगिरी और लुहारगिरी के कार्य का प्रशिक्षण प्रदान किया जाये। जिससे कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से की जा सके। **(गुप्ता, 1978, पृ0 361)**

22 फरवरी 1927 को लार्डलिनथिगो की अध्यक्षता में गठित 'कृषि आयोग' के समक्ष भी अपनी गवाही में उन्होंने उपर्युक्त बात दुहरायी थी और यह भी कहा था कि साधारण माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों में भी खेती एक पाठ्य विषय हो ताकि जब विद्यार्थी कॉलेज में प्रवेश करें, तब उन्हें खेती की अच्छी शिक्षा प्राप्त हो सके। वे विश्वविद्यालयों में उच्चस्तरीय कृषि–शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते थे। उनके अनुसार विश्वविद्यालय सर्वोत्तम उदीयमान विद्यार्थियों को आकर्षित करता है। विश्वविद्यालय ही विचारों के प्रसार तथा विद्यार्थी समाज में किसी विषय के लिए उत्साह पैदा करने का सर्वोत्तम केन्द्र है। उनका सुझाव था कि कॉलेजों में पर्याप्त संख्या में स्नातक प्रशिक्षित किये जाये और वे किसानों की सहायता से खोज के काम में लगाए जाये। उनका सुझाव है कि कृषि को उद्योग से जोड़ा जाय, ताकि किसानों को अधिक लाभ मिले।

महामना मालवीय जी ने पुनः आगे कहा कि खेती उच्च स्तरीय शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में कृषि विभाग स्थापित किये जाये और कृषि कॉलेज खोले जाये। उन्होंने कहा कि –



> "विश्वविद्यालय देश के सर्वोत्तम उदीयमान विद्यार्थियों को आकर्षित करता है। वह विचारों के प्रसार का तथा समाज में किसी विषय के लिए उत्साह पैदा करने का सर्वोत्तम केन्द्र है। अगर कृषि विज्ञान संकाय के विद्यार्थी और प्रोफेसर दूसरे विज्ञानों के ज्ञाताओं के निकट सानिध्य में एक केन्द्र में काम करेंगे तो विश्वविद्यालय से दूर एक पृथक संस्थान की तुलना में इस वातावरण की कहीं अधिक प्रेरणा प्रद पायेगें। **(एग्रीकल्चरल कमीशन रिपोर्ट, 1927, जि0 7, पृ0 702)**

उनकी राय में विश्वविद्यालय में दूसरे विद्वानों के सम्पर्क और सहयोग से ही कृषि विज्ञान के विशेषज्ञ कृषि सम्बन्धी उच्च स्तरीय अनुसंधान अच्छे ढंग से कर सकेंगे। उन्होंने कहा कि "पूसा" इन्स्टीट्यट जिसने अनुसंधान के क्षेत्र में काफी अच्छा काम किया है इससे भी कहीं अच्छा काम कर पाता, यदि किसी निवासीय विश्वविद्यालय में वही स्थापित किया गया होता और वह उसका एक अंग होती। (वही, पृ0 702)

सन् 1931 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कृषि–संस्थान की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी कि यहाँ पर उत्कृष्ट कृषि–शिक्षा के साथ ही साथ उपयोगी कृषि–अनुसंधान के फलस्वरूप, फसलों की नई–नई किस्मों का विकास हो सकेगा तथा नई कृषि–विधियाँ किसानों को सुझाई जा सकेंगी। मालवीय जी ने इस बात पर बल दिया कि यहाँ से निकाली गयी प्रजातियाँ क्षेत्र के लोगों की आवश्यकताओं के अनुकूल हो, जिससे वे इनका भरपूर लाभ उठा सकें। कृषि में मशीनों का उपयोग इस सार्थकता से हो जिससे मानवश्रम बड़े पैमाने पर बेकार न होने पाये, गाँवों में बेकारी की समस्या न पैदा होने पाये। वे छोटी–छोटी सहकारी समीतियों को बनाएं जाने के पक्षधर थे, जिससे किसानों में स्वावलम्बन की भावना बढ़े, उत्पादन पर सबका हक बने, जिससे सामाजिक चेतना आए तथा कृषि उत्पादन बढ़े।

मालवीय जी ने कहा कि यह प्रतियोगिता का युग है। इसमें हमारे किसनों को संसार के किसानों से टक्कर लेनी है। इस प्रतियोगिता का मुकाबला करने के लिए उन्हें शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से पुष्ट बनाने में सहायता करनी चाहिए। अधिक आत्म–सम्मान और निर्भरता और उचित गौरव की भावना का उनमें पोषण किया जाना चाहिए।

इसके लिए उन्होंने एक शाही 'कृषक औद्योगिक संस्थान' खोलने का सुझाव दिया जिनकी शाखाएं प्रत्येक जिले में हो और जिनकी बैठकों तथा सम्मेलनों में किसान ससम्मान, आमन्त्रित किये जाएं। (एग्रीकल्चरल कमीशन रिपोर्ट, जिल्द 7, पृ0 709–16)

### 3.3.6 स्त्री शिक्षा

महामना की शिक्षा नीति सर्वाधिक व्यवहारिक और कालजयी है उनका कोमल हृदय शिक्षा की तत्कालीन ह्रासोन्मुख दशा देखकर द्रवीभूत हो उठता था, यही कारण है कि उन्होंने अपना समग्र जीवन शिक्षा के सम्बर्धन में समर्पित कर दिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उत्सर्ग का मूर्तिमान स्वरूप है। शिक्षा की तत्कालिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं,–

> "भारत सरकार हमारी शिक्षा के लिए क्या व्यय करती है इसे सुनकर पाठकों को चकित और दुखित होना पड़ेगा। सरकार इस देश में शिक्षा–प्रसार के लिए एक आना के लगभग प्रति व्यक्ति व्यय करती है। जिस देशवासियों से सरकार एक अरब से अधिक धन वार्षिक वसूल करती है, उनकी शिक्षा के लिए इतना कम खर्च करना न्याय है अथवा अन्याय। **(मालवीय जी के लेख : पृ0 129)**

महामना मालवीय जी की दृष्टि में स्त्री–शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर ध्यान नहीं दिया गया था। उनका कहना है कि हमारे जातीय जीवन में सैकड़ो वर्ष से अंध–विश्वास रूपी कुसंस्कार इकट्ठे होते गये हैं। जिनके कारण ही हमारी जाति प्राण–विहीन समझी जाती है। अतएव इन कुसंस्कारों को हटाने के लिए ब्रहमचर्य और सुचरित्र रूपी पैने हथियारों का उपयोग करना ही जातीय जीवन के उत्थान का एक मात्र मार्ग है। परन्तु हमारा सुचरित होना, ब्रहमचारी बनना अथवा अन्ध विश्वास का परित्याग करना तभी हो सकता है जब स्त्री वर्ग को सुधार कर उसे अपना बना ले। जब हम इस वर्ग को अपने साथ लेकर नहीं चलते, तब तक हम कभी जातीय जीवन की लहलहाती हुई लता को देखकर आनन्दित नहीं हो सकते। "स्त्री शिक्षा का जो अर्थ लोग साधारणतः आजकल कर लेते हैं, हम उस बारे में अपने पाठकों से कुछ भी अधिक निवेदन करना नहीं चाहते। शिक्षा से हमारा तात्पर्य हृदय और मन की सभी शक्तियों का सम्यक् रूप से विकास और उनकी पूर्ण पुष्टि से है।"



स्त्री शिक्षा को वे पुरूष–शिक्षा से भी अधिक आवश्यक मानते थे। इसके लिए उन्होंने प्रयाग में एक "गौरी पाठशाला" और बी0एच0यू0 में महिला महाविद्यालय की स्थापना की। वे स्त्रियों को वेद पढ़ाने के भी समर्थक थे। 16 मार्च 1921 को कौंसिल में गोखले द्वारा प्रस्तुत प्राथमिक शिक्षा–विधेयक के समर्थन में बोलते हुए मालवीय जी ने कहा था,–

> "समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति तथा उस उत्कृष्ट जीवन से, जो ज्ञान द्वारा संभव है, वंचित रखना बहुत दुःखदायी बात है।"

उन्होंने सन् 1907 के अभ्युदय में लिखा था,– "जातीय जीवन के पुनरूत्थान के लिए स्त्री शिक्षा के पवित्र कार्य को उतह मालवीय जी ने गाँव–गाँव में सभा करने पाठशाला मल्लशाला खोलने, मिलजुल कर प्रत्येक पर्व–त्योहार मनाने, अनाथो, विधवाओं, मंदिरों तथा गाँवों की रक्षा करने, स्त्रियों का सम्मान एवं दुःखियों की सहायता करने, आदि का

अपना एक स्वरचित सन्देश इस प्रकार दिया है।

"ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिवर्ष महोत्सवः।।
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्य संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम्।।
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी बधार्हणः।।

स्त्रियों की शिक्षा को महामना ने सर्वाधिक महत्व दिया। उनकी धारणा थी कि,– "पुरूषों की शिक्षा से स्त्रियों की शिक्षा का अधिक महत्व है, क्योंकि वे ही भारत की भावी संतति की माँ हैं। वे हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्वज्ञानियों, व्यापार तथा कला–कौशल के पुरस्कर्त्ताओं की प्रथम शिक्षिका है। उनकी शिक्षा का प्रभाव भारत के भावी नागरिकों की शिक्षा पर विशेष रूप से पड़ेगा। महाभारत में कहा गया है,– "माता के समान कोई शिक्षक नहीं है।" इस तरह मान्यता के प्रबल पक्षधर थे। वे नारी जाति का सर्वतोभावेन उत्थान और कल्याण चाहने चाले महामानव थे।

छात्राओं के सर्वांगीण विकास के लिए वे सदा जागरूक रहे। उनकी मान्यता थी कि लड़कियों को भी सारी शिक्षा सुलभ होनी चाहिए। उनकी धारणा थी कि "हमें स्त्रियों की शिक्षा में भी साहित्य तथा संस्कृति के उत्तम ज्ञान के साथ देनी चाहिए। देश की स्त्रियों का किस प्रकार शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान किया जा सकता है, ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।" नारी में ऐसे समृद्धि व्यक्तित्व की परिकल्पना उनके अन्तर्मन में थी जो प्राचीन तथा नवीन सभयता के सभी गुणों का समन्वय हो।

## 3.4 शिक्षण विधियाँ

शिक्षण अथवा अध्यापन विधियों का शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षण विधियों का उद्देश्य केवल बालकों को कुछ



बातों का ज्ञान प्रदान करना ही नहीं, बल्कि अध्यापक और बालकों के पारस्परिक सम्बन्धों में सजीवता लाना है। शिक्षण विधियाँ बालकों के मस्तिष्क के साथ–साथ उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व, बुद्धि, भावना, मूल्यों और मनोवृत्तियों पर भी प्रतिक्रिया करती है जो शिक्षण विधियाँ मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से उपयुक्त होती हैं, वे ही बालकों के व्यक्तित्व के समस्त गुणों का विकास करने में सहायक होती हैं। शिक्षक अपनी शिक्षण विधि के आधार पर शिक्षण का व्यापक स्वरूप निश्चित कर लेता है। शिक्षण विधि वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति होती है। इसके अन्तर्गत शिक्षक विषय–वस्तु को एक क्रम में व्यवस्थित करता चला जाता है। विधियों के अन्तर्गत विभिन्न कार्य किये जाते हैं, जिनकी सहायता से लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

**प्रो0 एम0 वर्मा** ने पद्धति की परिभाषा इस प्रकार की है,– "पद्धति एक केवल अमूर्त तार्किक प्रत्यय होता है। इस पदार्थ तथा पद्धति में भेद कर सकते हैं। जबकि वास्तव में दोनों एक जैविक तथ्य को बनाते हैं। पदार्थ पद्धति का निर्धारण करता है। पाठ्य–वस्तु अथवा साहित्य की शैली तथा ढंग को निर्धारित करते है।"

बाइनिंग मानते हैं कि,– "शिक्षण विधि शिक्षा प्रक्रिया का गतिशील कार्य है।"

ई0 बी0 वेस्ले के शब्दों में,– "शिक्षा में शिक्षण विधि नामक शब्द शिक्षक द्वारा पथ–प्रदर्शित की हुई उन क्रियाओं की एक माला है, जो छात्रों के द्वारा सीखने में परिणित हो जाती है।" अतः पद्धति एक क्रिया न होकर प्रक्रिया है, जो किसी एक चरण (Step) से आबद्ध न होकर कई अनेक चरणों द्वारा निर्मित होती है तथा इन चरणों का सम्मिलित रूप ही 'पद्धति' को जन्म देता है। शिक्षण कार्य में शिक्षण–विधि के महत्व को बताते हुए माध्यमिक शिक्षा द्वारा मुदालिपर आयोग (1952) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है,–

"यहाँ तक कि सर्वोत्तम पाठ्यचर्या/शिक्षा क्रम एवं सर्वपूर्ण सिलेबस/पाठ्यक्रम भी मृत, तुल्य है जबकि उसके लिए उचित शिक्षण पद्धति और कुशल शिक्षकों की व्यवस्था न हो।"

इस आधार पर हमें प्रतीत होता है कि शिक्षक एक बुद्धिजीवी के रूप में होते हुए भी वह एक शिक्षक है जिसमें वह अपने विषय के ज्ञान कौशल को इस प्रकार से अपनी सूझ–बूझ से छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है जिससे छात्रों में उपर्युक्त अधिगम हो सके।

### 3.4.1 आगमन व निगमन विधि

आगमन व निगमन विधि एक दूसरे के पूरक है। आगमन विधि की सहायता से जिस नियम की खोज की जाती है उसकी सत्यता की परीक्षा निगमन विधि से की जाती है। महामना जी ने इस विधि का प्रयोग अपनी शिक्षण प्रणाली में किया है। हर एक शिक्षण विधि किसी न किसी उद्देश्य पर आधारित होती है। महामना जी शिक्षा का उद्देश्य बालक का पूर्ण विकास कर उसमें राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना मानते हैं।" मालवीय जी के मतानुसार,–

"विद्यार्थियों को उन कार्यों को छोड़ देना चाहिए जो उसके स्वार्थ और विद्याध्ययन में विघ्न डालते हो, किन्तु दशा विशेष में जब कोई भारी विपत्ति न पड़े कि उसे हटाने के लिए तुरन्त को उद्योग करना पड़े। तो विद्यार्थी को अपना कार्य छोड़कर विपत्ति निवारण का प्रयास करना होगा।" **(मालवीय जी की जीवन झलकियाँ, पी0के मालवीय, पृ0 42)**

इस प्रकार से शिक्षार्थी सोपान प्रति सोपान क्रमशः सामान्य से विशेष की ओर बढ़ेगा, किन्तु यदि विशेष परिस्थिति हो तो विद्यार्थी विशेष से क्रमशः सामान्य की ओर भी आ सकता है। भौतिक शिक्षा को जहाँ महामना जी निगमन शिक्षा प्रणाली से प्रणीत करते हैं तो



वही आध्यात्मिक ज्ञान एवं दार्शनिक तर्कों को सर्मझने के लिए आगमन शिक्षण प्रणाली को उपयुक्त मानते हैं।

### 3.4.2 मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति

महामना जी के शैक्षिक विचारों एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को दृष्टि में रखते हुए जब शोधार्थी उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधि पर दृष्टिगत करता है तो उनमें वह मनोवैज्ञानिक तथ्यों की झलक पाता है। चूँकि महामना जी ने मनोविज्ञान के सिद्धान्त का गहनता के साथ अध्ययन किया था। अतः उन्होंने प्रारम्भिक स्तर पर ही ठोस चारित्रिक उन्नयन की शिक्षा की अवधारणा की। उन्होंने अपनी शिक्षण पद्धति में सिद्धान्तों के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्व प्रदान किया। उन्होंने कहा कि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित कोई भी शिक्षण प्रणाली सुगमता से अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकती है। पिल्सवरी के अनुसार,– "मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है।" **(पिल्सवरी, भटनागर सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान, पृष्ठ–5)**

इसी का अनुसरण करते हुए महामना जो भी व्यावहारिकता के स्तर पर खड़ा करने के लिए बालक को शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। अतः परम्परागत शिक्षा प्रणाली को मनोविज्ञान से जोड़कर पुरातनता और अर्वाचीनता में सामंजस्य स्थापित करना ही महामना जी की शिक्षा प्रणाली का मूल आधार था। इस आधार पर महामना जी ने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को "आधुनिक युग का 'गुरूकुल' कहा है।"

### 3.4.3 रचनात्मकता को प्रोत्साहन

बालक को रचनात्मकता की ओर प्रवृत्त करना ही हमारी शिक्षा का मूल उद्देश्य है। इस प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले महामना जी शिक्षा द्वारा प्राप्त पुस्तकीय ज्ञान को पूरा नहीं समझते थे। उनके अनुसार काल की आकांक्षा को ध्यान में रखकर महात्मा गाँधी की

बुनियादी शिक्षण पद्धति को अपनाकर ही राष्ट्र का कल्याण सम्भव था। उन्होंने कहा कि,–

"यदि शिक्षा द्वारा व्यक्ति की रचनात्मक को प्रोत्साहन नहीं मिलता है तो वह शिक्षा व्यर्थ है। इस विधि से छात्रों में आत्म विश्वास का विकास होगा और वह अपने पैरों पर खड़ा होना सीख सकेगा। **(प्रान्तीय कौन्सिल के भाषण, सन् 1907)**

महामना जी के अनुसार माध्यमिक शिक्षा स्तर पर बुनाई, रंगाई, धुलाई, कढ़ाई, वस्त्र छपाई, बढ़ईगिरी, और मीनाकरी आदि की शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए ताकि उसमेंक रचनात्मकता को प्रोत्साहन मिल सके।

अतः उपर्युक्त आधार पर शोधार्थी यह पाता है कि महामना जी का शिक्षण पद्धति में रचनात्मकता का पुर समाहित है। महामना जी इसके माध्यम से राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे।

### 3.4.4 सीखने का अवसर प्रदान करना

मनुष्य अपने जीवन में जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता है और वह जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता है। क्योंकि सीखना एक जन्मजात प्रवृत्ति है। अतः समाज को माता–पिता व विद्यालय के साथ ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे बालक प्रतिक्षण कुछ सीखे। अतः महामना जी इस तथ्य को स्वीकार करते थे और उन्होंने अपनी शिक्षा प्रणाली में भी इसका विशेष ध्यान रखा था और सीखने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये थे। एक अवसर पर महामना जी ने कहा भी है कि,–

"वाणिज्य कर्म में भारत के वर्णक प्रारम्भ से ही निपुण है। कृषि कर्म में वे परिश्रमी एवं कुशल हैं। भूमि जल आदि का भी अभाव नहीं है। प्रजा पढ़ी लिखी है तो कोई कारण नहीं है कि भारतवर्ष



की समृद्ध से समृद्ध देश की समानता न कर सके। इसके लिए आवश्यक है कि देश भर में रचनात्मक शिक्षा का प्रचार हो और इस प्रचार के लिए सीखने के अवसर प्रदान करना ही हमारा प्रमुख कर्तव्य है। **(मालवीय जी के लेख सम्वत् 1966)**

इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि महामना की शिक्षा को व्यवहारिक एवं रचनात्मक स्वरूप प्रदान करके सभी छात्रों को सीखने के अधिकाधिक समान अवसर प्रदान करना चाहते थे, ताकि बालक अनुभवों के आधार पर परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश के साथ उपर्युक्त अनुकूलन कर सके।

### 3.4.5 भाषा शिक्षण विधि

किसी देश अथवा राष्ट्र की उन्नति उसकी राष्ट्र भाषा पर निर्भर करती है। भाषा भाव अभिव्यक्ति का साधन है। महामना जी शिक्षा में भाषा शिक्षण पर विशेष बल देते थे। भाषा शिक्षण के लिए वे अध्ययन विधि स्वीकार करते थे। वे मानते थे कि साहित्यिक सृजन एवं पठन–पाठप द्व ारा भाषा का शिक्षण किया जाना चाहिए। वे सभी भाषाओं के समर्थक थे,

किन्तु मातृभाषा शिक्षण, भाषा शिक्षण पर विशेष बल देते थे। उन्होंने कहा है कि,–

"हम लोगों में तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार जीविकोपार्जन हेतु हिन्दी और संस्कृति पढ़ना आवश्यक नहीं। अतः उसकी ओर हम ध्यान नहीं देते, इस कारण हमें मात्र जीविकापार्जन लायक ही भाषा शिक्षण प्राप्त होता है। इस शिक्षण के साथ जो शिक्षा हमें मिलती है। उससे हमें अपनी प्राचीन संस्कृत और दशा का ज्ञान नहीं हो पाता। फलस्वरूप हम पशु बने रहते हैं। अतः हमें अन्य भाषाओं के साथ ही साथ मातृभाषा शिक्षण पर भी बल देना चाहिए।" **(मालवीय जी के भाषण का अंश ज्येष्ठ कृष्ण व सम्वत्, 1964, पृ0 –5)**

मातृभाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए थामस डेविस ने कहा कि,–

> "जो भाषा व्यक्ति के साथ ही विकसित होती है वह उसके शारीरिक अंगों, उसके जलवायु, उसके व्यवहार तथा उसकी मिट्‌टी के साथ ऐसे समाहित होती है कि उसके प्रभाव में अन्य किसी भाषा के द्वारा स्वाभाविक रूप से तथा सुन्दर रूप से वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।" **(सम सजेसन्स फार टीचर्स आफ इंग्लिश : लैगवेज शिक्षा मंत्रालय पत्रिका सं0 26, पृ0–41)**

मातृभाषा के महत्व को प्रदर्शित करते हुए एच0 सी0 बाल्ड लिखते हैं कि,– "हम बोलना, बोलने के द्वारा ही सीखते हैं न कि भाषा के सम्बन्ध में पढ़ने के द्वारा। बोली जाने वाली भाषा पहले आती है और यही हमारी वाणी की वास्तविकता है।" (द ग्रोथ आफ इंग्लिश–बाल्ड एच0 सी0, पृ0–7)

महामना जी भाषा शिक्षण की अध्ययन विधि को स्वीकार कर अन्य भाषाओं के साथ ही साथ मातृभाषा शिक्षण को उपयोगिता को भी स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार प्रारम्भिक काल ही से शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।

### 3.4.6 क्रिया एवं अभ्यास विधि

महामना जी क्रियाशीलता को मानव जीवन के उन्नयन के लिए महत्वपूर्ण मानते थे, उनकी धारणा थी कि वास्तविक क्रियाओं एवं कृषि सम्बन्धी कार्यों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर ही बालक सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि यश, ज्ञान, स्व क्रिया एवं स्वानुभव द्वारा प्राप्त होगा। महामना जी की विचारधारा व्यवहारिक एवं कार्योन्मुखी थी। उसकी शैक्षिक विचार धारा का व्यवहारिक पक्ष उनके शैक्षिक कार्यों में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने स्वक्रिया द्वारा सीखने पर बल दिया। वे चाहते थे कि शिक्षण मात्र पुस्तकीय या सैद्धान्तिक ही न हो। उनका विश्वास था कि इस प्रकार



से अर्जित ज्ञान का प्रभाव स्थायी होता है। उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में प्रयोगशालाओं का निर्माण कराया। ताकि छात्र सत्यता की जाँच कर सके। कला कौशलों, उद्योग और विज्ञान के शिक्षण के लिए उन्होंने स्वयं करके देखने और स्वयं अभ्यास करके सीखने पर बल दिया। कला–कौशल की शिक्षा के सन्दर्भ में इसे आज ***कार्यशाला विधि*** कहते हैं और विज्ञान की शिक्षा के सन्दर्भ में ***प्रयोगशाला विधि*** कहते हैं।

### 3.4.7 वैज्ञानिक विधि

महामना जी की धारणा थी कि वैज्ञानिक विधि परिवर्तन की मूल विधि होती है। वैज्ञानिक भावों के उदय के लिए वे छात्रों की शिक्षा में वाद–विवाद को एक आवश्यक प्राविधि मानते थे। सम सामयिक राजीति, धर्म और विज्ञान आदि विषयों पर निरन्तर तर्क–वितर्क एवं वाद–विवाद चलते रहना चाहिए। वे मानते थे कि इससे छात्रों में वैज्ञानिक विधि द्वारा महामना जी नवीन समाज की संरचना सम्भव मानते थे। महामना जी शोध विधि को एक वैज्ञानिक विधि की संज्ञा प्रदान करते थे।

### 3.4.8 स्वाध्याय एवं व्याख्यान विधि

मालवीय जी के अनुसार उच्च स्तर पर स्वाध्याय का विशेष महत्व है। इन्होंने स्पष्ट किया कि इस स्तर पर आते–आते छात्र स्वयं पढ़कर समझने योग्य हो जाते हैं। अतः इस स्तर पर छात्रों को स्वाध्याय के अवसर प्रदान किये जाएं। स्वाध्याय के सम्बन्ध में ये अपने छात्रों से कहा करते थे कि पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तक में लेखक की विचार धारा में डूब जाओ, यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है। ये अपने छात्रों से यह भी आशा करते थे कि वे किसी विषय पर विभिन्न लेखकों

और समालोचकों की पुस्तकें पढ़े और उसके बाद स्वयं चिन्तन मनन करें और सही तथ्यों को जानने का प्रयत्न करे। साफ जाहिर है कि केवल पुस्तक–पठन को स्वाध्याय नहीं मानते थे। परन्तु पुस्तक के पठन के बाद चिन्तन–मनन को भी आवश्यक समझते थे।

उच्च कक्षाओं के लिए इन्होंने व्याख्यान विधि का समर्थन किया है। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि शिक्षकों का व्याख्यान देते समय उदाहरण और दृष्टान्त प्रस्तुत करने चाहिए और विषय सामग्री को स्पष्ट करना चाहिए।

### 3.4.9 दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग

दृश्य–श्रव्य शिक्षण का मूल आधार मनोविज्ञान है उसके अन्तर्गत मौखिक शब्दों के बजाय

प्रतीकात्मक/प्रदर्शनात्मक पर अधिक बल दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है। इनके प्रयोग से छात्रों में ज्ञान प्राप्त करना सुगम हो जाता है। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है। इनके प्रयोग से छात्रों में ज्ञान प्राप्त करने की रुचि बनी रहती है। क्रो एण्ड क्रो ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि,–

> "श्रव्य–दृश्य उपकरण सीखने वाले व्यक्तियों, घटनाओं, वस्तुओं और धारणाओं तथा पर प्रभाव सम्बन्धों के नियोजित अनुभवों से लाभ उठाने के अवसर देते हैं।" **(इन्ट्रोडक्शन टू एजूकेशन – क्रो एण्ड क्रो, पृ0 425)**

इन्हीं उपर्युक्त विचारों की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए महामना जी भी शिक्षण पद्धति में दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग करने हेतु सुझाव देते थे। उनका विचार था कि इन उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भिक स्तर पर अधिक से अधिक किया जाना चाहिए। महामना जी निरीक्षण, भ्रमण एवं परिश्रम के साथ ही चलचित्र, वीडियो, रेडियो



आदि का इतिहास, भूगोल तथा अन्य विषयो के शिक्षण का सशक्त माध्यम मानते थे।

## 3.5 शिक्षक-शिक्षार्थी

महामना मालवीय जी वैचारिक दृष्टि से आदर्शवादी व्यक्ति थे। वे प्राचीन गुरूकुल शिक्षा प्रणाली के हिमायती थे। इस शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों का स्थान बड़ा ही विशिष्ट था। उनका जीवन बड़ा ही संयमित और उदान्त भाव से परिपूर्ण होता था। इसी प्रणाली के अनुरूप मालवीय जी भी अध्यापकों के उदारता के समर्थक थे। अध्यापकों की भाँति ही छात्रों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था। छात्रों में वे कठोर अनुशासन, विनम्रता, संयम, और सादगी जैसे उत्तम गुणों का प्रादुर्भूत करना चाहते थे।

महामना जी की भी यही धारणा थी कि शिक्षा प्रक्रिया छात्र तथा अध्यापक रूपी ध्रुवों के अभाव में सम्पादित नहीं हो सकती। इसलिए महामना जी ने छात्र को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। उनकी राजनैतिक तथा सामाजिक आकांक्षाओं का केन्द्र बिन्दु छात्र ही है।

भारत के अन्य मनीषियों की परम्परा में मालवीय जी भी विश्वास करते थे कि विद्यार्थियों को कठोर नियम पालन करना चाहिए। गुरू के प्रति उनका कर्तव्य "गुरू देवो भव" की भावना से अनुप्रमाणित होना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए उन समस्त नियमों का पालन करना आवश्यक है। जिसके द्वारा वे समाज के एक आदर्शवादी व्यक्ति बन सके। इन नियमों के पालन के बिना बालकों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास संभव नहीं है। विद्यार्थियों के कर्तव्य के बारे में उन्होंने अनेक स्थलों पर अपना विचार व्यक्त किया है। इस छात्र का समुचित मार्गदर्शन शिक्षण संस्थाओं में कुशल अध्यापकों द्वारा ही संभव है।

शिक्षक को धर्म परायण, विद्वान और सत्यानुवेषी होना चाहिए और शिक्षार्थियों के प्रति समर्पित होना चाहिए। ऐसे शिक्षकों से ही शिक्षार्थी सच्चे ज्ञान और उच्च आचरण की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधकर्ता वैदिक काल से वर्तमान तक छात्र तथा अध्यापक की स्थिति का आंकलन करते हुए आधुनिक शिक्षा जगत में महामना जी के विचारों को समझने का प्रयास करेगा।

### 3.5.1 शिक्षार्थी

मालवीय जी छात्रों को आदर्श की प्रतिमूर्ति बनाना चाहते थे। वे छात्रों को उपदेश देते थे,–

> "ब्रह्मचर्य का आजीवन पालन करो, सुबह–शाम संध्या करो, ईश्वर की प्रार्थना करो, माता–पिता, गुरू तथा प्राणी–मात्र की सेवा करो और जगत में सम्मान प्राप्त करो।" **(गुप्त, 1980, पृ0 100)**

उनका कथन था कि यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है। ईश्वर का सदैव अपने भीतर अनुभव करो और इस मंदिर को कभी अपवित्र न होने दो। (वासुदेव शरण, 1962, पृ0 321) इस मंदिर को अपवित्र बना देने वाली कुछ बातें हैं जिनसे सदा बचो। भूलकर भी, स्वप्न में भी, असत्य मुँह से न निकले, इसकी कोशिश बराबर करो। यदि कहीं भूल से झूठ निकल जाये तो उस असत्य के लिए प्रार्थना करो, क्षमा माँगों, सच्चे और पवित्र हृदय से उसके चरणों में गिरो और पुनः असत्य न बोलने का व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बारहवें दीक्षांत समारोह (1929) में बोलते हुए उन्होंने छात्रों से कहा, "सत्य कहो, सत्य पर आचरण करो और सत्य को ही अपने मानस में उतारो।" **(वही, पृ0 322)**

कठोर काम में अनवरत लगो रहने का अभ्यास डालो। पढ़ते समय मन की एकाग्रता पर बल दो। इस संदर्भ में मालवीय जी ने



अपने दीक्षान्त भाषण (1929) में कहा था,– "पढ़ते समय सारी दुनियाँ को एक ओर रख दो और पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ। यही तुम्हारी उपासना है ओर यही तुम्हारी पूजा है।" (गुप्त, 1980, पृ0 99) खूब जमकर मेहनत करो और अपने उच्च और पवित्र आदर्श को कभी मत भूलों। शस्त्र और शास्त्र, बुद्धिबल और बाहुबल दोनों का उपार्जन करो। "सादा जीवन और उच्च विचार" का आदर्श न भूलो। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना तुम्हारे भीतर शारीरिक बल के साथ की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिए हुई है इसे सदैव स्मरण रखो। (वही, पृ0 100)

देश भक्ति के प्रति विद्यार्थियों को उपदेश देते हुए महामना जी कहते थे कि स्वदेश के प्रति अपने कर्तव्य का ध्यान आपको उसके हित तथा सम्मान की रक्षा के लिए सब कुछ न्यौछावर एवं बलिदान करने को सदैव प्रस्तुत रहने में सहायक होगा। आप स्वतंत्रता चाहते हैं तथा अपने देश में स्वराजय की इच्छा करते हैं। तब आपको इसके आवश्यक्तानुसार सब कुछ बलिदान करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहना ही पड़ेगा। आपने अपने पाठ्य पुस्तकों में स्वदेश अथवा विदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति अथवा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए होने वाले प्राचीन तथा वर्तमान आन्दोलनों का जोशीला इतिहास पढ़ा होगा। आपने शूरता तथा आत्म–बलिदान के भावों से व्याप्त संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय साहित्यों का भी अध्ययन किया होगा। आपने बार–बार इंग्लैण्ड के प्रभावशाली साहित्य में अनेक ऐसे अवतरणों को पढ़ा होगा जिनमें उस देश की स्वतन्त्रता शूरता तथा आत्म त्याग की प्रशंसा का गान बड़े गर्व से किया गया है। आपने यह पढ़ा होगा कि किस प्रकार गत महासागर में इंग्लैण्ड और फ्रांस के नवयुवकों ने अपनी अथवा अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए स्वयं अपने को मृत्यु के मुँह में डाल दिया तथा किस साहस, शूरता तथा दृढ़ता से फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के सुकुमार बालकों ने अपने उद्योग में विजय प्राप्त

करने तक युद्ध को जारी रखा और इस प्रकार अपनी मातृभूमि के लिए अमिट गौरव प्राप्त किया। मैं आपको मातृभूमि के गौरव के लिए उसी प्रकार की स्वतन्त्रता से प्रेम तथा उसी प्रकार के आत्म त्याग की भावना का संचय करने का उपदेश देता हूँ। केवल इसी तरह से हम लोग पुनः एक शक्तिशाली राष्ट्र बना सकते है। (वही, पृ0 519)

स्नातकों! आप लोग यहाँ से बाहर जीवन में प्रवेश करने के लिए देश की इतिहास के संकटमय समय में जा रहे हो। देश के एक पुराने सेवक के नाते तथा आपके प्रति अपने कर्तव्य पालन के विचार से मुझे आपको एक और उपदेश देना है। मुझे विश्वास है कि देश के स्वतन्त्रता की प्रगाढ़ इच्छा मेरे ह्रदय में उतनी ही है जितनी कि आप नवयुवकों में। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि मैं इस बात के लिए कितना चिन्तित हूँ कि स्वराज्य हम लोगों को शीघ्राति–शीघ्र प्राप्त हो। परन्तु हम लोग ऐसा तभी कर सकते हैं जब हम सच्चे मार्ग का अनुसरण करें। देश की वर्तमान परिस्थिति तथा संसार की परिस्थिति को देखते हुए हमें चाहिए कि एकता तथा दृढ़ता से समझौता के साथ काम करें। मैं समझता हूँ कि इस मार्ग की सफलता के लिए परिस्थितियाँ दिनों–दिन अनुकूल हो रही हैं परन्तु परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर भी इस मार्ग का त्याग नहीं करना चाहिए। इस विजय में पृथ्वी पर जन्म लिए हुए महापुरूषों के उपदेशों तथा कार्यों को स्मरण कीजिए। महाभारत के प्रारम्भ में रक्त–प्रवाह को बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को यह उपदेश दिया था कि वे तब तक प्रतीक्षा करें जब तक शांतिपूर्ण समझौते के मार्ग बन्द न हों जाय। वे स्वयं राजदूत बनकर दुर्योधन के पास पाण्डवों के सत्य अधिकार को समझाकर विरोध को हटाने के लिए गये। विदुर ने कहा आप व्यर्थ समय खो रहे हो परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा कि मुझे यह संतोष हो जाना चाहिए कि अपनी शक्ति के अनुसार मैंने संग्राम की भयंकरता को बचाने का उचित



उद्योग किया। श्रीकृष्ण अपने कार्य में सफलता नहीं प्राप्त कर सके। तब बाध्य होकर उन्होंने पाण्डवों को लड़ाई करने की राय दी। मैं चाहता हूँ कि आप इसको याद रखे कि औपनिवेशिक स्वराज्य अब हमारा लक्ष्य है। मैं सोचता हूँ कि शांतिमय पत्र–व्यवहारों द्वारा ही अगले साल तक प्राप्त हो जायेगा। मैं यह चाहता हूँ कि आप ऐसा ही सोचें और अनुभव करें मानो औपनिवेशिक स्वराज्य आपको प्राप्त हो गया है। आगामी बारह महीनों में अथवा इससे कुछ अधिक समय में आपको औपनिवेशिक सरकार चलाने के लिए जिम्मेदारी लेना पड़ेगी। इस भार को सहने के लिए तैयार हो जाइए। जिस वस्तु का भार आप पर दिया जा रहा है उसे आसान मत कीजिए। उसको लेने से पहले ठहरिये, सोचिए, जाँचिए तथा तौलिए। जब आपके विचार में यह बात बैठ जाए कि जो वस्तु आप ले रहें हैं वह देश के लिए कल्याण कर रहा हूँ तब उसे स्वीकार कीजिए। अगर वह ऐसा नहीं है तो उसका परित्याग कीजिए और जिस बात को आप यह समझे कि राष्ट्र के स्वार्थ के लिए हितकर नहीं है उसका विरोध दृढ़ता तथा निर्भीकता से कीजिए। निडिर बनो। (चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 66–70)

मालवीय जी का विचार था कि मनुष्य की वास्तविक उन्नति बिना धार्मिक भावना के विकास से संभव नहीं है। उन्होंने अपने **दीक्षांत भाषण (1929)** में कहा,–

> "जिस दिव्य सत्य की शिक्षा आपको इस विश्वविद्यालय में बराबर दी गई है उसे स्मरण रखो। इस बात का ध्यान रखो कि यह सम्पूर्ण सृष्टि एक ही है और इसमा नियन्ता तथा व्यवस्थापक एक अविनाशी, सर्वव्यापक, सर्वशक्ति अथवा परमात्मा है जिसके बिना कुछ भी जीवित नहीं रह सकता। यह याद रखो कि यह विश्व उसी अद्वितीय शक्ति का साक्षात्कार है। जैसा कि उपनिषदों ने बताया है कि दृश्य अथवा अदृश्य सब का कर्ता तथा भर्ता वही

परमात्मा है। इस बात का ध्यान रखो कि वह शक्ति उसे ब्रह्म कहो अथवा ईश्वर कहो, समीप अथवा दूर वह सदा वर्तमान है। जीवित सृष्टि का वही जीवन है। जब कभी आपको इस शक्ति के अस्तित्व में संदेह पैदा हो तो आप अपनी दृष्टि उस आकाश की ओर फेरिए जो उन ताराओं और ग्रहों से विचित्र प्रकार से सुशोभित है, जो असंख्य युगों से मनोहरी ढंग से भ्रमाण करते आये हैं उस प्रकाश की ओर ध्यान दो जो अत्यन्त दूरस्थ सूर्य से पृथ्वी पर जीवों की रक्षा के लिए आश्चर्यकारी वेग से यात्रा करके आता है अपनी दृष्टि तथा अपने मस्तिष्क को अपनी शरीर रूपी अद्‌भुत मशीन की ओर झुकाओं जिसे परमात्मा नपे आपको दिया है और इस मशीन की अद्‌भुत बनावट और शक्ति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करो। अपने चारो तरफ दृष्टि डालो और सुन्दर पशु पक्षियों को, मनोहर वृक्षों को कमनीय पुष्पों तथा स्वादिष्ट फलों को देखो। इस बात का स्मरण रखो कि वह परमात्मा जिसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वर कहते हैं। इस सम्पूर्ण जीवधारी सृष्टि में उसी प्रकार वर्तमान है जैसे मुझमें या आप में। यही सब धार्मिक उपदेश का तत्व है। **(सुन्दरम्, 1936, पृ0 13–14)**

मालवीय जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को आदर्श मानव बनाने के लिए सदैव प्रेरित करते रहते थे। वे विद्यार्थियों से कहा करते थे–

"यहाँ से तुम आदर्श मानव बनकर निकलो और संसार को दिखा दो कि हम काशी हिन्दू विश्वद्यिालय के छात्र हैं, हमारी माता चाहे दीन हो या कैसी ही हो पर वह हमारी ही माता है। यह माता पूज्य है, हम माता से ऐसी शिक्षा लेवे, ऐसे उपदेश सुने जिससे सुपुत्र होने का फल दिखा दें।"

कृष्ण और सुदामा साथ–साथ एक गुरूकुल में पढ़े थे। धनी और गरीब साथ–साथ रहते थे। वैसे ही हम रहें। माता भेदभाव नहीं



जानती। उसके लिए ऊँच–नीच दोनों पुत्र समान हैं। बड़े पुत्र का कर्तव्य है कि छोटे पुत्र को योग्य बना ले। भूले–भटकों को सहारा दे। उसे सदाचारी और धार्मिक बनाकर योग्य भाई कर ले। उसे परम पुरूष का अनन्य भक्त और जननी का सच्चा लाल बना ले जिससे स्वच्छन्द पवित्र जीवन बनाकर वह लोक कल्याण कर सके। **(चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 10)**

मालवीय जी का विद्यार्थियों को उपदेश था, –

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाय विद्यया।
देश भक्त्यात्मत्यागेन सम्मानर्हः सदाभाव।।

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के योग्य बनो।

वे चाहते थे कि विद्यार्थी सदा सत्य का आचरण करें, ब्रह्मचर्य और व्यायाम द्वारा अपनी जीवन शक्ति को पुष्ट करें, नियमित रूप से विद्याध्ययन कर अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास करें, अपने में अपने कुटुम्ब तथा अपने राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता पैदा करें, सदा शुद्धता से रहे और शील का पालन करें। (लाल, 1978, पृ0 324)

वे अपने विद्यार्थियों को बताते थे कि शील और देश प्रेम से रहित ज्ञान निरर्थक है वे कहते थे– "शीलं प्रधानं पुरूषे" विनम्रता ही मनुष्य का प्रधान गुण है। उनकी शिक्षा थी कि चरित्र ही मनुष्य को ऊँचा उठाता है, शील सम्पन्न विद्वान ही अपने जीवन का समुचित उत्कर्ष तथा समाज की ठोस सेवा कर सकता है। वे अपने विद्यार्थियों से सदा कहा करते थे कि आप लोग कोई ऐसा काम मत करना जिससे माता के आँचल पर धब्बा लगे, और राष्ट्र के गौरव को क्षति पहुँचे। वे विद्यार्थियों से कहते थे,– "हृदय को पवित्र बना लो, मन को निर्मल बना लो, संसार में जहाँ जाओगे वहाँ मान के अधिकारी होगे।" (व्यास, 1963, पृ0 179) भारत के भावी नागरिकों के संबंध

में महामना जी की विराट परिकल्पना को सार रूप में इस तरह अभिव्यक्ति किया जा सकता है।

> "बिना अंध भक्त व अंधविश्वासी हुए धार्मिक। बिना पाखण्ड व जिटलता के आडम्बरहीन व सरल। बिना दुराग्रही हुए आस्था व विश्वास पर अटल। सिद्धान्तों व आदर्शों पर समझौता किये बिना उदार व सर्ममान्य। इन चार चीजों को सामने रखते हुए मालवीय जी ने विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करना चाहा।''

नैतिक चरित्र का निर्माण और आध्यात्मिक अनुशासन महामना मालवीय जी की शिक्षा अवधारणा के आधारभूत तत्व थे। उनका उद्‌देश्य विद्यार्थियों की प्रतिभा एवं रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना था ताकि वे सही अर्थों में अनुशासित व उत्तरदायी नागरिक बन कर देश के विकास में सार्थक भूमिका निभा सकें।

### 3.5.2 शिक्षक

महामना जी अपनी शिक्षा किसी एक काल या किसी एक वाद की सीमाओं में बाँधने का प्रयास नहीं किया। महामना जी स्वयं में एक विशिष्ट व्यक्ति थे। अतः उनका चिन्तन अपने प्रकार का ही था। वे शिक्षा में अध्यापक को आवश्यक पहले समझते थे उसे वे रथ का एक पहिया मानते थे जिसके अभाव में शिक्षा प्रक्रिया की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब वे अध्यापक को इतना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं तो वे निश्चित रूप से प्राचीन कालीन शिक्षक या आदर्शवादी शिक्षक की कल्पना करते हैं। किन्तु महामना जी तो एक व्यवहारवादी व्यक्ति के स्वामी थे। अतः वे चाहते थे कि उनका अध्यापक केवल रूढ़ियों और आदर्शों से ही न जुड़ा रहे, वह यर्थाथ तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी अपनाएँ ताकि वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों एवं समस्याओं का समाधान किया जा सकें। महामना



जी अपने शिक्षक के सभी वैदिक (बौद्ध और मुस्लिम काल) एवं सभी दर्शनों (आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद तथा यर्थाथवाद) के गुणों का समावेश करना चाहते थे ताकि शिक्षा जगत को पूर्ण अध्यापक प्राप्त हो सके। मालवीय जी ने शिक्षक के सम्बन्ध में कहा है कि –

> "राष्ट्र का सच्चा एवं सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति शिक्षक ही है जिसके कारण विद्या–प्रेम, समाज–सेवा, राज भक्ति एवं मानव धर्म की स्थापना एवं विकास होता है।" इसीलिए मानव निर्माण का दायित्व शिक्षक पर सौंपा गया है। मालवीय जी के अनुसार शिक्षक को प्राचीन गुरूओं के समान धर्म परायण, विज्ञान वेत्ता, ब्रह्मचारी, सत्यानुशील करने वाला, छात्रों की देखभाल करने वाला, निर्देशन देने वाला और समाज का प्रतिनिध और नेता होना चाहिए तभी वह हमारे लिए आदर्श और अनुकरण होता है। **(गुप्त, 1980, पृ0 100)**

अगर शिक्षक का व्यक्तित्व आदर्श एवं संतुलित नहीं है तो अपने प्रस्तुत पाठ के आधार पर वह बच्चों में उन गुणों को विकसित कर सकने में समर्थ नहीं होगा जिसके द्वारा छात्रगण सामाजिक श्रृंखलाओं से तादात्म्य स्थापित करते हैं तथा समाज के एक गुणी और योग्य नागरिक बनते हैं। विचार प्रधन बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले पुरूष से ही श्रेष्ठ शिक्षक होने की आशा की जा सकती है। धैर्य, निष्पक्षता एवं न्याय, सहयोगात्मक भाव, प्रेम और सहानुभूति, प्रसन्नता, मिलन सारिता और शिष्ट मार्यादापूर्ण व्यवहार, मधुरवाणी और शालीनता, नियमितता, उदारता एवं नेतृत्व शक्ति आदि गुणों में विभूषित व्यक्ति ही श्रेष्ठ अध्यापक की कोटि में आता है। अध्यापकों को अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए जो छात्रों के लिए आदर्श और अनुकरणीय हो। छात्र सदैव अध्यापक का अनुकरण करते हैं, प्राचीन गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों का व्यक्तित्व आदर्श से परिपूर्ण होता था। शिक्षक अपने पवित्र आदर्शों से ही बालकों में अनुशासन जैसे श्रेष्ठ

गुण का बीजारोपड़ करते थे। वर्तमान समय में भी अनुशासन की भावना का विकास तब तक संभव नहीं है जब तक शिक्षक समाज के सामने अपना आदर्श रूप नहीं प्रदर्शित करेंगे। अतः विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना का विकास योग्य और प्रतिभाशाली अध्यापक ही कर सकते हैं। (चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 65)

अन्य क्षेत्रों के समान ही शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक की स्थिति के सम्बन्ध में एक समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहते थे। महामना जी की अपेक्षा है कि उनका अध्यापक प्राचीनता, तथा आधुनिकता के गुणों से मुक्त हो। उससे सदाचार, सचरित्रता, अध्यात्मिकता एवं धार्मिकतता के साथ ही सामाजिकता, वैज्ञानिकता के गुणों का भी समावेश होना चाहिए। ऐसा अध्यापक ही आज की वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप छात्रों का विकास कर सकेगा।

### 3.5.3 शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध

मालवीय जी प्राचीन गुरूकुल का दृश्य इस युग में देखना–दिखाना चाहते थे। प्राचीन गुरूओं के अनुरूप ही उनके शिष्य हो, जिस स्तर तक गुरू ने विद्या के आकाश में अपने को पहुँचाया है उसके शिष्य उसकी परंपरा को, उसके 'प्रदाय' को, उतना ही ऊपर ले जाएं। शिष्य गुरू के निकट रहता था, उसका अंतःवासी होता था और धीरे–धीरे वह गढ़ा जाता था। उसकी गढ़ंत रात–दिन प्रतिक्षण होती थी। वे कहते थे,– "गुरू शुश्रुषया विद्या" अर्थात् गुरू की सेवा से ही विद्या प्राप्त होती है। वे "मनु" के इस श्लोक की ओर विद्यार्थियों का ध्यान बहुधा आकृष्ट करते थे।

अभिवादन शीलस्य नित्यं बृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

अर्थात् अपने से बड़े गुरूजनों को प्रमाण करने तथा उसकी सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल इन चारों की वृद्धि



होती है। (लाल, 1978, पृ0 161) महामना द्वारा उद्धृत पंक्तियों से हम उनके द्वारा प्रस्तुत गुरू–शिष्य सम्बम्धों को समझ सकते हैं–

> "गुरूकुल प्रणाली हमारी प्राचीन शिक्षा का द्योतक है। जब बालक गुरू आश्रम में जाकर अपने जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य नियमों का पालन करते हुए अपनी भक्ति एवं रम के द्व ारा गुरू को दक्षिणा देकर ज्ञानार्जन करता है। यहाँ गुरू शिष्य सम्बन्धों की बिना अनुभूति के आधार पर ही सुखद कल्पना की जा सकती है। गुरू बालक का सबसे हितैषी होता है और बालक के लिए गुरू की आज्ञा की आज्ञा ही ब्रह्म आज्ञा है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि महामना जी की शिक्षा में निहित गुरू–शिष्य सम्बन्ध आदर्श परक एवं सौहार्दपूर्ण है। महामना जी निश्चित रूप से प्राचीन तथा नवीन के बीच सेतु का कार्य करते है। वे सम्बन्धों की प्राचीन छवि को बनाएं रखते हुए उसे आधुनिक स्वरूप प्रदान करने का भरसक चेष्टा करते हैं जिससे वे पूर्णतया सफली भूत हुए हैं।

## 3.6 अनुशासन

छात्रों में विनय और अनुशासन मालवीय जी की एक विशिष्ट कल्पना थी। विद्यार्थियों में शिष्य तत्व का भाव ही विनय अथवा अनुशासन का आधार है। एक अधिकारियों और अध्यापकों की सहानुभूति, वात्सल्य और हितकामना से उत्पन्न होता है। विनय प्रभावात्मक और अन्तर्निहित होता है। नियन्त्रण, शक्ति और प्रहार से यह पैदा नहीं किया जा सकता।

महामना जी के अनुसार अनुशासन एक प्रकार की मानसिक आदत है, जो शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के पारस्परिक स्नेहिल सम्बन्धों पर आधारित है। महामना जी स्वतन्त्रता एवं अनुशासन के महत्व

को आदर्शवादी विचार धारा के आधार पर मानते हैं महामना जी की हार्दिक आकांक्षा थी कि शिक्षा जगत में बालक का दमन एवं शोषण नहीं होना चाहिए उसे अपने विकास हेतु अवसर मिलने चाहिए ताकि अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए इसी से बालक का स्वाभाविक विकास सम्भव होगा।

इस प्रकार शोधकर्ता यह देखता है कि महामना जी के क्षेत्र में स्वतन्त्रता और अनुशासन पर समान रूप से बल देते हैं वे चाहते थे कि छात्रों को स्वतन्त्रता प्रदान की जाये किन्तु वह अनुशासन की सीमाओं का उल्लंघन न करें। निश्चित रूप से माहमना जी मर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षधर थे।

मालवीय जी ने आत्म–अनुशासन के विकास के लिए नैमित्तिक कर्म–काण्ड पर आस्था प्रकट की है। इसलिए उन्होंने नित्य पूजा, संध्योपासना ब्रत, उपवास आदि क्रियाओं पर विशेष बल दिया है। आत्म अनुशासन के विकास के लिए मालवीय जी ने प्रायाश्चित के सिद्धान्त पर भी बल दिया है। इस संदर्भ में उन्होंने कहा है कि पुरूष या स्त्री से जो पाप या भूल हो जाए उसके लिए स्नान करके शरीर को पवित्र बनाकर एवं पूजा करके ईश्वर से उस पाप या भूल के लिए क्षमा माँगनी चाहिए कि फिर पाप या भूल न होवे। इस प्रकार से तन और मन को पवित्र कर "ऊँ नमो नारायण" इस मंत्र से सर्व व्यापक और सूर्य मण्डल में प्रकाशवान ईश्वर को ध्यान कर श्रद्धा और भक्ति से जल और फूल से अर्ध देकर मंत्र के द्वारा उसकी उपासना करनी चाहिए। अन्तः प्रेरित अनुशासन का विकास करने के लिए मालवीय जी ने प्रत्येक एकादशी के दिन धर्म सम्बन्धी कथाओं का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयोजन किया था। जिससे विद्यार्थियों में उत्कृष्ठ धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावों का संचार हो। उस दिन सभी अध्यापक तथा विद्यार्थियों को कथा के समय उपस्थित रहना पड़ता था। अन्य सुअवसरों पर भी धार्मिक सम्भाषण दिये जाते थे।



इस प्रकार व्यस्त रहने के परिणाम स्वरूप छात्रों में अनुशासन की भावना धीरे–धीरे दृढ़ होती जाती थी और विश्वविद्यालय से निकलने के पश्चात् भी विद्यार्थी जीवन पर्यन्त अनुशासित ढंग से अपना जीवन व्यतीत करते थे। (गुप्त, 1980, पृ0 103)

स्पष्टतः यह मनोभाव उनकी भागवत भावना का द्योतक है। यह भाव उनके प्रशासन या सार्वजनिक क्रिया–कलापों में मानवीकरण का प्रभाव भर देता है। वे नियमों के यंत्रवत् अनुपालन में विश्वास नहीं करते थे। जब भी मानवता की दृष्टि से अपेक्षित होता था, वे नियमों में ढील देने से हिचकते नहीं थे, क्योंकि उनके विचार में नियम मनुष्य के लिए बनाये गये हैं, न कि मनुष्य नियमों के लिए बने हैं।

साफ जाहिर है कि मालवीय जी शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को अनुशासित देखना चाहते थे, दोनों से मन, वचन और कर्म के संयम की अपेक्षा करते थे। इनका स्पष्ट मत था कि यदि शिक्षक मन, करते रहते हैं और उन्हें रचनात्मक कार्य में लगाते हैं। रचनात्मक कार्यों को करने से बालकों में थकान का अनुभव नहीं होने पाता और उन्हें मानसिक दबाव से कुछ राहत मिलती है। जिन बालकों के समक्ष हमेशा नया–नया कार्य उपस्थित रहता है आगे चलकर वे अपने को पूर्ण अनुशासित बनाने में सफल होते हैं। **(वर्मा, 1992, पृ0 390)**

## 3.7 माध्यम

महामना मालवीय जी का नारा था,– हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान। हिन्दी में भी ये संस्कृत गर्भित शुद्ध हिन्दी के पक्षधर थे इनका तर्क था कि हिन्दी भारत के बहुसंख्यक वर्ग की भाषा है। अतः इसे ही राष्ट्र भाषा बनना चाहिए। "सभ्य संससार के किसी भी अन्य भाग में जनसमुदाय की शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा में नहीं है। एक बालक सात वर्ष की अवस्था से ही अंग्रेजी पढ़ने लगता है और उसी समय से उसकी मातृभाषा का अध्ययन छूट जाता है और वह

गौण हो जाती है। फल यह होता है कि उस समय से लेकर स्कूल छोड़ने तक, उसके बहुमूल्य समय का अधिकांश एकमात्र शिक्षा की माध्यम कठिन अंग्रेजी भाषा से परिचय प्राप्त करने में ही लग जाता है। इस बात का हिसाब लगाना बहुत कठिन है कि भारतीय जनता को इसके लिए बाध्य होकर किसी परिणाम में अपने अमूल्य समय, परिश्रम तथा धन की तिलांजलि देनी पड़ती है। हमारे विद्यार्थियां को किसी भी विषय में उतना अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता, जितना उसी विषय का अपनी मातृभाषा के द्वारा अध्ययन करके एक अंग्रेज बालक ज्ञान प्राप्त करता है। भारतीय नवयुवकों को सोचने और अपने को व्यक्त करने की दोनों शक्तियों का ह्रास हुआ है। राष्ट्रीय शिक्षा अपनी उत्तमता के शिखर पर तब तक नहीं पहुँच सकती, जब तक जनता की मातृभाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में न स्थापित की जाये।"

देशी स्कूलों की उन्नति और वृद्धि तभी तक संभव है, जब तक देशी भाषा और लिपि का व्यवहार हो। स्कूलों में ही नहीं विश्वविद्यालय तथा उच्च श्रेणियों में भी देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा के माध्यम के बारे में भी मालवीय जी ने गहराई से सोचा था। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि अंग्रेजी भाषा को सीखने में समय बर्बाद होता है और साथ ही मौलिक सृजनशीलता के लिए यह भाषा उपयुक्त नहीं है। इन दोनों की दृष्टियों से मातृभाषा की महत्ता, सुस्पस्ट बताई गई। 10वीं सदी के पूर्व हिन्दुओं द्वारा बीजगणित, ज्यामिति, खगोलशास्त्र, औषधि विज्ञान, धातु की इत्यादि के क्षेत्र में किये गये अनुसंधान यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि परीक्षा के दृष्टि से हममें कमी नहीं है। आवश्यकता है ज्ञान, जिसमें पश्चिम में विकसित ज्ञान भी सम्मिलित है, के प्रचार एवं प्रसार की। मालवीय जी अंग्रेजी भाषा की दुरूहता पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी साहित्य–सम्मेलन (1910) के प्रथम अधिवेशन में कहा,–



"भारतीय विद्यार्थियों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का कोई अन्त नही है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यहाँ शिक्षा तथा सेवाओं का माध्यम एक दुरूह विदेशी भाषा है जिसको सीखने में बालकों का अनाावश्यक 5–7 वर्ष का समय नष्ट हो जाता है। संसार में कही भी शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नहीं है बल्कि सभी देशों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का ही प्रयोग किया जाता है। हम लोगों को भी शिक्षा का माध्यम अपनी मातृभाषा को ही बनना चाहिए। **(सुन्दरम्, 1936, पृ0 500)**

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस (1916) के अवसर पर मालवीय जी ने मातृभाषा के औचित्य पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा,–

''मातृभाषा बालक और किशोर विद्यार्थियों के दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली भाषा है। मातृभाषा अन्य सभी विषयों के ज्ञानोपार्जन का आधार होती है। मातृभाषा सरलतम भाषा होती है। मातृभाषा में सृजित साहित्य की और बालक और किशोर विशेष अभिमुख होते हैं, क्योंकि इसमें उन्हें स्वाभाविक आनन्दोपलब्धि होती है। मार्टिन लूथर, रॉवेल, रिचार्ड मुलकास्टर, मॉटेन, फ्रांसिस बेकेन और लॉक जैसे पाश्चात्य जगत के यर्थाथवादी शिक्षा शास्त्रियों ने मातृभाषा की शिक्षा पर विशेष बल दिया है। मुलकास्टर का विचार था कि बच्चों की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही दी जानी चाहिए, यही मनोवैज्ञानिक पद्धति है।''

कामेनियस ने मातृभाषा के प्रचलन को विशेष आवश्यक बतलाया है। उसका विचार था कि बालक जब तक मातृभाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त न कर ले तब तक उसे कोई विदेशी भाषा न पढ़ायी जाय। इस प्रसंग में अपना मत व्यक्त करते हुए कामेनियस ने लिखा है,–

"किसी विदेशी भाषा का मातृभाषा के स्थान पर ज्ञाकन कराना उतना ही मूर्खतापूर्ण और विवेकरहित है जितना बच्चे को चलने के पूर्व चढ़ना सिखाना है।" (वर्मा, 1972, पृ0 408) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह 1920 में भाषण देते हुए मालवीय जी ने कहा,–

"हमें केवल स्कूलों में ही नहीं बल्कि विश्वविद्यालयों तथा उच्च श्रेणियों में भी देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।" मेरा यह विचार कदापि नहीं है कि "हम अंग्रेजी भाषा को सर्वथा त्याग दें।" हमारे युवकों को विदेशी भाषाएं सीखने की आवश्यकता है और कोई विदेशी भाषा हमारे लिए उतनी लाभदायक नहीं हो सकती जितनी अंग्रेजी। अतः सुव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी को उचित स्थान मिलना चाहिए क्योंकि अंग्रेजी अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, उसमें अनेक उत्तम कोटि के साहित्यिक रत्न भरे हैं और उसके द्वारा हमें पाश्चात्य विचारों और संस्कृति का परिचय होता है। इसलिए हममेंक से कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी जानना जरूरी है। वे राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के विभाग चला सकते हैं और राष्ट्र को पश्चिम का उत्तम–साहित्य, विचार और विज्ञान दे सकते हैं। किन्तु अंग्रेजी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ायी जानी चाहिए और उसके द्वारा युवकों की शिक्षा देने की व्यवस्था बदल देना चाहिए। **(चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 43)**

मालवीय जी हिन्दी भाषा तथा भारतीय संस्कृति के घनिष्ठ सम्बन्ध से पूर्ण रूप से परिचित थे। इसलिए उन्होंने हिन्दू महासभा और सनातन धर्म सभा के मंचों से हिन्दुओं को अपने बच्चों को हिन्दी भाषा पढ़ाने के लिए उत्साहित करते थे। पंजाब में रहने वाले और उत्तर पश्चिमी सीमा पर रहने वाले भारतीयों को वह हिन्दी का प्रयोग करन के लिए उत्साहित करते रहते थे। (दर एण्ड सोमसकन्दन,



1966, पृ0 705) अपनी वृद्धावस्था में जब उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया गया तब उन्होंने वहाँ की पुरानी परपाटी तोड़कर हिन्दी में ही भाषण किया क्योंकि वह सदा विश्वास करते थे कि विद्यार्थियों के समूह में विदेशी भाषा का प्रयोगक भले ही उपयुक्त हो किन्तु जिस समाज में हिन्दी जानने वाले लोग हों वहाँ विदेशी भाषा में भाषण करना देशद्रोह है। (चतुर्वेदी, 1980, पृ0 47)

इस प्रकार मालवीय जी ही प्रथम और सर्वग्राही व्यक्ति हैं जिन्होंने पिछली शताब्दी में हिन्दी की सेवा का बीड़ा उठाया और जीवन के अन्त तक उसकी वकालत करते रहे। हिन्दी के लिए मालवीय जी का योगदान एक प्रचारक के रूप में अधिक था वह हिन्दी में कोई सृजनात्मक योगदान नहीं दे सकें।

## 3.8 पाठ्यक्रम

फ्रांसिस जे0 बाऊन ने अपनी पुस्तक "शैक्षिक समाज विज्ञान" में लिखा है कि,–

"पाठ्यक्रम उन समग्र परिस्थितियों का समूह है जिसकी सहायता से शिक्षक तथा विद्यालय शासक उन सभी बालकों तथा नवयुवकों के व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं जो विद्यालय से होकर गुजरते हैं।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम विद्यालयी व्यवस्था का मूलाधार है। शिक्षा की सम्पूर्ण गतिविधि पाठ्यक्रम पर ही केन्द्रित होती है। पाठ्यचर्या द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। पाठ्यक्रम के व्यापक अर्थ को प्रकट करते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) में लिखा है,–

"पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैद्धान्तिक विषयों से नहीं है जो विद्यालय में परम्परागत रूप से पढ़ाये जाते हैं अपितु इसमें

अनुभवों की वह सम्पूर्णता भी निहित है जिसमें बालक विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला तथा खेल के मैदान एवं शिक्षक और शिक्षार्थियों के अनगिनत सम्पर्कों से प्राप्त करता है, इस प्रकार का विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्चर्या बन जाता है, जो छात्रों के सभी पक्षो की प्रमाणित कर सकता है तथा विकास में सहायता दे सकता है।"

महामना मालवीय जी भारत में निरन्तर गिरती हुई शिक्षा की दशा से बहुत चिन्तित थे। उन्हें प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चस्तरीय सभी प्रकार का शिक्षा के ऊपर गंभीरता पूर्वक विचार किया। उन्हें सभी स्तर के पाठ्यक्रमों के विषय में बहुत असंतोष था। उन्होंने 14 दिसम्बर सन् 1929 में आयोजित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अपने भाषण में कहा,—

"भारतवासियों की शिक्षा की दुर्दशा का कोई अंत नहीं। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के डेढ़ सौ वर्षों के लम्बे शासन काल से शिक्षा से सम्बन्धित अनेक आयोग पारित हुए सभी में भारतवासियों की कुशलता का बार—बार आश्वासन दिया गया परन्तु कोई संतोष जनक परिणाम नहीं प्राप्त हुआ।" **(चतुर्वेदी, 1936, खण्ड—2, पृ0 63)**

सर्वप्रथम उनका ध्यान प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर गया उन्होंने कहा कि यह पाठ्यक्रम इतना नीरस अव्यवहारिक और जीवन के लिए अनुपयोगी था कि बच्चे इसकी तरफ आकर्षित नहीं होते थे। प्राथमिक शिक्षा का स्तर निम्न था, पाठ्यक्रम अमनोवैज्ञानिक और अरूचिकर था। जो भी बच्चे प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने जाते थे वे एक दो वर्ष बाद विद्यालय छोड़कर भाग जाते थे और इस प्रकार अपव्यय और अवरोधन की समस्या इस क्षेत्र में उसी समय से प्रचलित है। ग्रामीण बच्चे विद्यालय आते थे और कुछ दिन बाद घर लौट जाते थे और इनकी साक्षरता, निरक्षरता में बदल जाती थी। वे



कई—कई साल एक ही कक्षा में रह जाते थे। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 1921 तक केवल 7.27 प्रतिशत लोग ही शिक्षित थे तथा सन् 1927 में पुरूषों की साक्षरता 6.91 प्रतिशत और स्त्रियों की साक्षरता 1.46 प्रतिशत थी। (सुन्दरम् 1936, पृ0 494) मालवीय जी चाहते थे कि प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य बनायी जाये तथा उसके पाठ्यक्रम को सरस और जीवनोपयोगी बनाया जाये।

इसी तरह माध्यमिक शिक्षा की दशा भी शोचनीय थी। मालवीय जी माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम से भी बहुत असंतुष्ट थे। उनके विचार से माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा था जो न तो बच्चों को जीवन के लिए तैयार कर पाता था और न तो अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने में ही सक्षम था। यह बिल्कुल किताबी था जो विद्यार्थियों को केवल रहने पर बल देता था। मालवीय जी का विचार था कि —

''माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो जो बच्चों को आगामी जीवन के लिए तैयार करे। इस समय भारत की प्रमुख आवश्यकता कृषि शिल्प तथा व्यापार सम्बन्धी ज्ञान का विकास करना है। अतः माध्यमिक विद्यालयों में कृषि, शिल्प तथा व्यवसाय सम्बन्धी विषयों को भी पढ़ाया जाना चाहिए तथा उनका विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। **(दर एण्ड सोमस्कन्दन, 1966, पृ0 51)**

विश्वविद्यालय शिक्षा के विषय में मालवीय जी अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है,—

"विश्वविद्यालयों की तुलना हम उन वृक्षों से कर सकते हैं जिनकी जड़े प्रारम्भिक पाठशालाओं की गहराई तक पहुँचती हैं और जो अपना रस तथा शक्ति द्वितीय श्रेणी के स्कूलों से प्राप्त करते हैं। जहाँ ये दोनों ही न्यनू तथा दोषयुक्त हो, जहाँ विद्यार्थियों

के लिए शिल्प आदि कलाओं की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न हो, वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को बाध्य होकर एक ही प्रकार के ऐसे विषय लेने पड़ते हैं जो उन्हें तुच्छ क्लर्की के पदों के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए अनुपयुक्त बना देते हैं।" **(चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 58)**

वे चाहते थे कि देश में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का पूर्णरूपेण विकास हो तभी विश्वविद्यालय के लिए योग्य विद्यार्थी प्राप्त हो सकते हैं। अतएव विश्वविद्यालयों में प्रवेश, उनकी शिक्षा तथा परीक्षाओं में अत्यन्त आवश्यक उच्चकोटि की श्रेष्ठता के निर्वाह के लिए राष्ट्रीय प्रणाली के आधार पर प्रारम्भिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में सर्वसाधारण के लिए निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये और साथ ही साथ उनमें उत्तम शिल्प आदि कलाओं की शिक्षा का प्रबन्ध रखा जाये। वर्तमान असंतोषजनक परिस्थिति को सुधारने का एक मात्र उपाय यही है। उनका विचार था कि –

"अपना विश्वविद्यालय इतने उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान करे कि उसका स्थान विश्व के विश्वविद्यालयों की उच्च श्रेणी में आ जाये। अपने यहाँ के छात्र जो विश्वविद्यालय से निकल रहे थे उनके लिए नौकरी की व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। अतः वे चाहते थे कि विश्वविद्यालय में ऐसे विषय पढ़ाये जाये जिससे छात्र स्वतन्त्र रूप से व्यापार कर सकें, रोजी–रोटी कमा सकें। इसी उद्देश्य से उन्होंने कृषि, व्यापार, इंजीनियरिंग, माइनिंग, मेटलार्जी इत्यादि विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की। **(सुन्दरम् 1936, पृ0 496)**

महामना प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान में परम आस्था रखते हुए भी उसे अर्वाचीनतम ज्ञान से समन्वित करने के पक्षपाती थे।बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में मालवीय जी ने युक्त प्रान्त की कौसिंल में बजट की आलोचना करते हुए जो भाषण किये थे उनको पढ़ने से तो यह स्पष्ट होता है कि मालवीय जी केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही नहीं बल्कि राष्ट्र का आर्थिक और सांस्कृतिक नव निर्माण भी करना चाहते थे। वे आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के समर्थक थे और चाहते थे कि भारतीय विद्यार्थी प्राचीन वाडमय के अध्ययन के साथ–साथ लौकिक अभ्युदय के लिए आधुनिक ज्ञान, विज्ञान, शिल्प विज्ञान, यंत्र विज्ञान और विद्युत विज्ञान की शिक्षा का भी देश में समुचित प्रबन्ध किया जाय और इन सबकी मदत से बड़े–बड़े कल–कारखाने खोले जाय और बड़े पैमाने पर देश में औद्योगिकरण किया जाय। (दर एण्ड सोमस्कन्दन, 1966, पृ0 53–54)



मालवीय जी विज्ञान के प्रयोगात्मक और व्यवहारिक पक्ष के बहुत प्रशंसक थे। वे चाहते थे कि विज्ञान के विद्यार्थियों को केवल पाठ्य–पुस्तकों द्वारा ही शिक्षा न दी जाय, बल्कि प्रचलित सिद्धान्तों और संचित अनुभवों की सच्चाई प्रयोगशाला में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध करायी जाय और निजी अनुभवों के द्वारा उन सिद्धान्तों को संशोधित तथा नये सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाय। वे हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विलियम जेम्स के इस मत से सहमत थे कि इस विधि से लेबोरेटरी वर्क और कार्यशाला प्रेक्षण का अभ्यास यथार्थता और अस्पष्टता के अन्तर का ज्ञान, तथा प्रकृति की पेंचीदगी की ओर वास्तविक तथ्य के सब शाब्दिक विवरणों की गल्तियों की पूरी जानकारी पैदा करते हैं, जो एक बार बुद्धि में बैठ जाने पर आजीवन जम जाती है। ये यथार्थता प्रदान करते हैं, ये ईमानदारी देते हैं, ये आत्म–निर्भरता का अभ्यास पैदा करते हैं, ये विद्यार्थी को उसके युग के स्वतः प्रसूत हितों से बहुत ही उचित ढंग पर संलग्न कर देते हैं, वह उसमें तल्लीन हो जाता है और उस पर टिकाऊ और गहरा प्रभाव डाल देता है। उस

युवक की तुलना में, जो इस ढंग से पढ़ाया जाता है, वह नवयुवक जो पुस्तकों द्वारा पढ़ाया लिखाया गया है जीवन में वास्तविकता से बहुत दूर रहता है। वह एक तरह से घर से बाहर रहता है और इसका अनुभव करता है, और बहुधा उदासी और चिन्ता से पीड़ित होता है जिससे वह अधिक वास्तविक शिक्षा द्वारा बचाया जा सकता है। (प्रोसीडिंग–सन् 1907 में प्रान्तीय कौंसिल में मालवीय जी का भाषण)

मालवीय जी चाहते थे कि वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा अपने देश में भी चालू की जाये और प्रयोगशाला तथा कार्यशाला में विद्यार्थियों को अपने हाथों के प्रयोग का अभयास कराया जाये। उनके ज्ञान को प्रयोगात्मक और व्यवहारिक बनाया जाये। उनमें निरीक्षण की शक्ति पैदा की जाये। उनके ज्ञान को यथा तथ्य तथा जीवनोपयोयगी बनाया जाये। उनकी धारणा थी कि भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने में तब तक सर्वथा असमर्थ है, जब तक वह वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषण का अध्ययन नियत्रित और अनिवार्य नहीं बनता। (चतुर्वेदी, खण्ड–2, पृ0 114) वे चाहते थे कि प्रारम्भिक विज्ञान की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा पद्धति का अनिवार्य अंग बना दिया जाय तथा माध्यमिक विद्यालयों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विज्ञान और वैज्ञानिक शिल्प विद्या की उच्चस्तरीय शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय ताकि हमारा देश बौद्धिक विकास तथा व्यवसायिक उन्नति में दूसरे प्रगतिशील देशों के समकक्ष बन सकें।

महामना जी ने स्वराज्य प्राप्ति का मूल आधार शिक्षा को मानकर शैक्षिक पाठ्यक्रम की अवधारणा की, पाठ्यक्रम में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों यथा शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास को यथोचित स्थान प्रदान किया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम का निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया जाये। महामना जी का पाठ्यक्रम इस दृष्टि से खरा तथा सर्वपक्षीय था।



### 3.8.1 पाठ्यक्रम की रूपरेखा

महामना मालवीय जी ने पराधीन भारत में इतना बहुमुखी पाठ्यक्रम रूपांकित कर विश्व के इतिहास में अपूर्ण घटना को प्रणीत किया उनकी पाठ्यक्रम सम्बन्धी रूपरेखा को शोधकर्ता निम्न प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है–

1. महामना जी शिक्षा को चरित्र विकास का साधन मानते थे और इन्हें भारतीय संस्कृति और धर्म पर अटूट आस्था थी। महामना का कहना था,–

   "मनुष्य उपकारी कार्य तभी कर सकता है जब उसका चरित्र अच्छा हो, तब भी वह लोक उपकार नहीं कर सकता। **(अभ्युदय, 10 अप्रैल, 1908)**

वे जीवनोत्कर्ष और राष्ट्र की उन्नति दोनों के लिए चरित्र गठन को आवश्यक समझते थे

उनके विचार से केवल व्यवसायिक उन्नति से ही किसी देश की जनता सुख तथा समृद्धि से सुरक्षित नहीं रह सकता। मालवीय जी स्वयं तो निर्भीक सात्विक तथा उदार आचरण एवं व्यवहार करते थे किन्तु वे अपने छात्रों से कहा करते थे कि चरित्र उठाओ और ब्रह्मचर्य का पालन करो उन्होंने लिखा है कि "ब्रह्मचर्य आश्रम के जिन विद्यार्थियों के चरित्र निष्कलंक पाये जायेगें तथा जो निश्चित पाठ्यक्रम सामप्त कर लेगें तो वे स्नातक पद पाने के अधिकारी समझे जायेगें।" (गुप्त, 1981, पृ0 105) अपने दीक्षान्त भाषण (14 सितम्बर, 1929) में मालवीय जी ने चरित्र के महत्व के प्रसंग में कहा था कि,–

> "धर्म चरित्र निर्माण तथा सांसारिक सुख का सीधा मार्ग है। इससे मनुष्य में उच्च कोटि की निःस्वार्थ सेवा की भावना आती है

जिससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है। सद्भावनाओं से अनुप्रमाणित सदाचार से विभूषित जीवन ही आत्मोत्कर्ष और जन कल्याण का उत्तम साधन हो सकता है।" **(चतुर्वेदी, खण्ड–3, 1936, पृ0 73)**

2 महामना जी ने कला एवं विज्ञान की व्यवस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में और धर्म दर्शन तथा कला की शिक्षा के साथ ही विज्ञान तथा प्राविधिक की शिक्षा अति आवश्यक समझी उनके अनुसार,–

"धर्म, दर्शन तथा कला की शिक्षा मनुष्य के सिर की भाँति और विज्ञान तथा प्राविधिकी की शिक्षा उसके धड़ के सामने है। अतः शिक्षा के दोनों प्रकार एक दूसरे से पूरक हैं। कला के बिना विज्ञान और विज्ञान के बिना कला शिक्षा अधूरी है।" **(द्विवेदी के9 डी0– भारतीय पुर्नजागरण और मदनमोहन मालवीय, पृ0 143)**

महामना जी का कहना था कि "ज्ञान प्राप्ति के लिए मस्तिष्क को संयत और उन्नति करने के लिए भारत के ऋषि और महात्माओं ने जिन नियमों को प्रतिपादित किए, जो साधन अपनाएं वे पूर्णरूप से तर्क और बुद्धि के आधार पर अवलम्बित थे।"

उपर्युक्त उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए मालवीय जी अपने प्रस्तावित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना में पाठ्यक्रम की एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शन शास्त्र, साहित्य और इतिहास के गम्भीर अध्ययन के साथ–साथ आधुनिक मनोविज्ञान, नीति विज्ञान, दर्शन शास्त्र, अर्थ शास्त्र, इतिहास, राजनीति शास्त्र तथा आधुनिक ज्ञान विज्ञान, गणित एवं शिल्प शास्त्र के विषयों का तुलनात्मक और समन्वायात्मक अध्ययन एम0 ए0 और एम0 एस0 सी0 कक्षाओं के लिए निर्धारित किया गया। (दर एण्ड सोमस्कन्दन, 1966, पृ0 53–54)



3. धार्मिक शिक्षा की दिशा में महामना जी संस्कृति दृष्टिकोण को न अपनाकर व्यापक रूप में पाठ्यक्रम निश्चित करते हैं। धार्मिक पाठ्यक्रम सत्यार्थ प्रकाश पर अवलम्बित था। वह बिना धार्मिक विचारों पर आक्षेप किये मानव मात्र के उत्थान करने वाली बातों का साम्प्रदायिकता की परिधि से उठकर प्रचार करना चाहते थे। महामना जी की धार्मिक भावना समिष्टवादी थी।

भारतीय समाज की संरचना धर्म की आधार शिला पर निर्मित हुई थी। अनेक विपदाओं के बाद भी भारत का दर्शन एवं आध्यात्म अक्षुण्य रहा है। इसका एक मात्र कारण, भारत की धार्मिकता और आध्यात्मिकता रही है। मालवीय जी के विचार जो शिक्षा पद्धति, जो पाठ्यक्रम इस आध्यात्मिकता पर आधारित नहीं होगी। वह भारतीय आत्मा के अनुरूप नहीं होगी।

महामना मालवीय जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा के लिए विशेष प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि "इस विश्वविद्यालय में संकुचित साम्प्रदायिकता को आश्रय नहीं दिया जायेगा। वरन् उन व्यापक, उदार और धार्मिक भावना को प्रोत्साहन दिया जाएगा जो मनुष्य के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास कर सके।" (चतुर्वेदी, खण्ड–3, पृ0 71) वे चाहते थे कि हिन्दू पक्का हिन्दू और मुसलमान पक्का मुसलमान बने। दोनों ईश्वर के भक्त हों। सभी लोग अपने धर्म के सिद्धान्त को समझें। अगर कोई हिन्दी किसी मुसलमान को मुसलमान होने के कारण हानि पहुँचावें और कोई मुसलमान हिन्दू को हिन्दू होने के कारण दुख दे, तो हमारी गणना संसार की सभ्य जातियों में कभी नहीं हो सकती। इस समय हिन्दुस्तान में बहुत सी जातियाँ मौजूद हैं, यदि कोई जाति चाहे कि दूसरी जाति यहाँ से चली जाये, तो यह उसका भूल है हिन्दू भी यहीं रहेंगे और मुसलमान

भी यहीं रहेंगे। हमें एक दूसरे को भाई समझना चाहिए। हिन्दू मन्दिरों में जाये, मुसलमान मस्जिदों में और ईसाई गिरजा में लेकिन देशहित में सबको एक हो जाना चाहिए। उन्होंने कहा—

''धर्म के प्रचार में किसी को क्लेश पहुँचाने वाला वाक्य नहीं बोलना चाहिए तथा ऐसा उपाय सोचना चाहिए जिससे प्रीति और मित्रता में वृद्धि हो। यदि आप गुलाब का फूल हांसिल करना चाहते हैं तो गुलाब का पौधा लगाकर उसे पानी से सींचा पाश्विक कर्मों से प्रेम का पौधा नही उग सकता। **("लीडर", 28 जून सन् 1923, लाहौर के विराट सभा में मालवीय जी का भाषण)**

4. औद्योगिक तकनीकी एवं प्राविधिक शिक्षा के प्रचलित, औद्योगिक क्रान्ति का वृहत् रूप में प्रवर्तन एवं स्वदेशी उद्योगों के उन्नयन की क्रमबद्ध योजना सर्वप्रथम महामना जी ने हमारे सम्मुख रखी। महामना जी पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा प्रायोगिक शिक्षा के समर्थक थे वे चाहते थे कि तकनीकी ढंग की शिक्षा अपने देश में बड़े पैमाने पर प्रारम्भ की जाये। प्रयोगाशाला तथा कार्यशाला में विद्यार्थियों को अपने हाथों से प्रयोग करने का अभ्यास कराया जाये। जिससे वर्तमान में वैज्ञानिक अन्वेषणों का अध्ययन नियमित और अनिवार्य हो सके। उनका मत था कि "विद्यालयों का उद्देश्य इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था करनी है कि वह विद्यालयों के कमरों में छात्रों को कारखानों तक पहुँचा सके। उन्होंने 14 दिसम्बर 1929 ई0 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अपने दीक्षान्त भाषण में शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि, —

"विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ विज्ञान, कला, कौशल और व्यवसाय सम्बन्धी विषयों की ऐसी शिक्षा जाये, जिससे देशी व्यवसाय तथा धरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति हो।" **(चतुर्वेदी, खण्ड–2, 1936, पृ0 47)**



हिन्दू विश्वविद्यालय में व्यवसायिक शिक्षा का एक विस्तृत पाठ्यक्रम का आयोजन बी0 एस0 सी0 और एम0 एस0 सी0 स्तर पर उनकी संरक्षता में किया गया था जिसमें कृषि, तकनीकी, औद्योगिक रसायन, चिकित्सा आदि विषय सम्मिलित थे। साथ ही साथ व्यापार को शिक्षा के लिए बी0 ए0 और एम0 ए0 स्तर पर वाणिज्य संकाय में कामर्स का पाठ्यक्रम तैयार किया गया था। चिकित्सा विज्ञान में दवाओं का उत्पादन भी किया जाये, जो विश्वविद्यालय चिकित्सालय के अतिरिक्त देश को शुद्ध एवं परिकृत दवाओं की आपूर्ति कर सके।

5. महामना जी जापान की कृषि शिक्षा व्यवस्था के बहुत प्रशंसक थे उनका कहना था कि जापान में कई सौ कृषि विद्यालय हैं जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त, विद्यार्थियों को खेती की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है बहुत सी माध्यमिक कृषि संस्थाएं हैं। महामना जी चाहते थे कि इसी प्रकार के कृषि स्कूल तथा कृषि संस्थाएं काफी संख्या में पूरे देश के अन्दर स्थापित किये जाये। कृषि सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसंधान किये जाये तथा कृषि शिक्षक तैयार किये जाये वे कृषि महाविद्यालयों को विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध करना चाहते थे।

कृषि प्रधान भारतीय कृषि शिक्षा के व्यापक महत्व को समझते हुए उन्होंने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कृषि महाविद्यालय की स्थापना कृषि शास्त्र की सैद्धान्तिक और प्रायोगिक अध्ययन व्यवस्था द्वारा की है। मालवीय जी चाहते थे कि यहाँ आधुनिकतम कृषि शास्त्र की पढ़ायी हो और यहाँ कृषि उत्पादन का कार्य भी हो, जो विश्वविद्यालय परिवार की खाद्यान्नपूर्ति के अतिरिक्त बाजार को भी अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादित खाद्यान्न आपूर्ति कर सके।

6. महामना जी ने अतिरिक्त शैक्षिक प्राविधिक के अन्तर्गत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में व्यायामशालाओं का निर्माण किया था। क्योंकि उनकी धारणा थी कि स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मस्तिष्क निर्माण करता है। महामना जी मानव जीवन को संघर्ष मानते थे और संघर्ष के लिए अनिवार्य मानते थे कि व्यक्ति में बल हो, शक्ति हो इसके लिए वे प्राणायाम, व्यायाम तथा आयुर्वेदिक आदि पर ध्यान देना चाहते थे। उन्होंने कहा कि,–

> "प्राणायाम के अभ्यास से हमारा शरीर स्वस्थ रहता है, मन स्फूर्तिदायक एवं प्रसन्न हो जाता है। हमें प्राणायाम के द्वारा जीवन सौन्दर्य से सिक्त जान पड़ता है जिसमें हम सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।" **(मालवीय पी0 के0, मालवीय जी के लेख, नेशलनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1962, पृ0 53–54)**

शारीरिक विकास की महत्ता पर पंजाब हिन्दू सम्मेजन (1924) में मालवीय जी अपने व्याख्यान में कहा,–

> "छात्रों शास्त्र पढ़ लिए तो क्या हुआ ? एम0 एस0 सी0 और डी0 एस0 सी0 की डिग्री ले ली तो क्या हुआ? शरीर में बल नहीं तुम अपनी रक्षा नहीं कर पाओगे, तो तुमसे दूसरों की रक्षा की आशा कैसे की जाय ? शरीर की रक्षा परम धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है कि वह व्यायाम करे।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में खेल–कूद की उत्तम व्यवस्था के लिए बहुत बड़े–बड़े क्रिड़ांगन बनवाये, जिसमें कहीं टेनिस कोर्ट, कहीं फुटबाल का मैदान, कहीं बालीबाल, कहीं बास्केट बाल, कहीं क्रिकेट, कहीं कबड्डी। सबके लिए पर्याप्त स्थान की व्यवस्था की। एक ही खेल के मैदान में बहुत खेलों के लड़के अलग–अलग खेल, खेल सकते हैं। कुश्ती, कसरत और व्यायाम के लिए शिवाजी हाल की उत्तम व्यवस्था कराये। दौड़, कूद गोला, हैम्बर, भाला प्रक्षेप इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य शिक्षा विभाग की भी स्थापना की जिसमें लड़कों को शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता है। अच्छे खिलाड़ियों को मालवीय जी विश्वविद्यालय के अन्दर बहुत सुविधाएँ प्रदान करते थे। जिससे वे अपनी कला का अधिक से अधिक विकास कर सके। (वही, पृ0 392–93)



### 3.8.2 अन्य पाठ्येत्तर क्रियाओं की शिक्षा

छात्रों के स्वःशासन समाज सेवा, खेलकूद शारीरिक श्रम की दिशा में भी उन्होंने कार्यविधि निश्चित की। न केवल शारीरिक एवं मानसिक श्रम दक्षता, तर्क वितर्क के माध्यम से विकसित करने पर बल दिया। वरन् इसके साथ ही राजनैतिक एवं व्यवहारिक शिक्षा को भी अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया।

महामना जी स्वयं संगीत का ज्ञान रखते थे। समय–समय पर संगीत सभाओं का आयोजन करवाते थे, विश्वविद्यालय में भी संगीत शिक्षा का प्रबन्ध महामना जी ने किया वे संगीत की मानसिक विकास के लिए महत्वपूर्ण समझते थे। भारत नाट्यम तथा कत्थक नृत्य से वे विद्यार्थियों में शारीरिक स्वस्थता बनाएं रखना चाहते थे। सामूहिक नृत्यों के माध्यम से छात्रों में सहकारिता एवं सहयोग की भावना आती है।

## 3.9 भाषा

महामना जी आधुनिक भाषाओं के समर्थक थे। किन्तु उसके विकास के साथ ही वे विद्यार्थियों के मात्र भाषा शिक्षा पर भी विशेष बल देते थे। उनके अनुसार, –

> ''हमारी शिक्षा का ध्येय के बल विदेशी ज्ञान विदेशी भाषाओं के माध्यम से करना नहीं है, वरन् हमें दूसरों के साथ (स्तुः) को भी

जानना है तभी हमारा वास्तविक विकास सम्भव है। **(मालवीय पी0 के0, मालवीय जी के लेख–पृ0 54)**

भाषा, जो मनुष्य के मानसिक विकास के लिए महत्वपूर्ण एवं आवश्यक साधन है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य को मनुष्य बनाया जाता है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपने विचारों को एक दूसरे तक पहुँचाता है। अर्थात् अपने भावों को प्रदर्शित करता है। भाषा विचार प्रकट करने का सबसे अच्छा तथा सुगम उपाय है। इसलिए सर्वप्रथम हिन्दुओं द्वारा संस्कृत भाषा का अध्ययन निश्चित किया गया। उस समय संस्कृत ही आदि भाषा थी। (चतुर्वेदी, खण्ड–3, 1936, पृ0 108) साहित्यिक दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य अत्यन्त उच्चकोटि का है। जो इस साहित्य से भली–भाँति परिचित है। वे भली प्रकार जानते हैं कि इस साहित्य में नैतिक तथा सांसारिक उन्नति के लिए अनमोल रत्न भरे पड़े हैं। प्रोफेसर मैक्समूलर इस बात से सहमत थे कि संस्कृत साहित्य में ऐसे अनमोल रत्न हैं, जिसका पाश्चात्य विद्वानों को थोड़ा ज्ञान है। उनका कथन है कि वास्तव में हमसे पीछे आने वाले लोगों के लिए अब भी बहुत सा कार्य करना शेष है। क्योंकि अत तब जो कुछ किया गया है उससे हम भारतीय दर्शन तथा साहित्य की पहली सीढ़ी पर पहुँचे हैं। महामना जी की धारणा थी कि,–

"साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा द्वारा ही हो सकती है।" **(हिन्दी साहित्य सम्मेलन– अध्यक्षीय भाषण सन् 1919)**

इसको वे शिक्षा के लिए शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे, इस माध्यम को वे विश्वविद्यालय स्तर तक अपनाया चाहते थे, साथ ही वे यह भी चाहते थे कि भारत में अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में स्थान मिले, सभी भाषाओं के साथ–साथ मातृभाषा के शिक्षण पर विशेष बल दिया।



महामना जी प्रारम्भिक स्तर पर बालको को नैतिक, आचार व्यवहार की शिक्षा देने के पक्षधर थे, उनका मत था कि इस स्तर पर बालक को स्थूल वस्तुओं के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। जिससे शनैः शनैः ज्ञार्नाजन कर विश्वविद्यालयी स्तर तक पहुँते–पहुँते अमूर्त एवं सूक्ष्म ज्ञान को ग्रहण कर सके एवं परिवर्तित परिवेश के अन्तर्गत अनुसंधान कार्यों के माध्यम से उपयोगी वातावरण तैयार कर सकें।

# चतुर्थ अध्याय

# निष्कर्ष

पं. मदन मोहन मालवीय जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। आपका जन्म एक अत्यंत ही धर्मनिष्ठ परिवार में हुआ। चूंकि आपकी शिक्षा का प्रारंभ घर पर ही हुआ अतः आप पर माता–पिता का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। पं. मदन मोहन मालवीय जी तत्कालीन भारत के स्वाधीनता संग्रामकालीन विचारक, उपनिवेशवादी, शासनाधीन समाज की गतिविधियों से उत्पन्न समस्याओं से उत्पन्न समस्याओं के विचारक थे। उस समय भारतीय समाज के सम्मुख अशिक्षा स्वाधीनता प्राप्ति के मार्ग में एक राष्ट्रीय स्तर की समस्या र्थी हमारे समाज के सम्मुख सबसे प्रमुख समस्या औद्योगिकीकरण, नगरीकरण आदि के परिणामस्वरूप अस्त व्यस्त समाज को पुनर्गठित करना था। जबकि भारत की, तत्कालीन प्रमुख समस्या अपनी संस्कृति की रक्षा एवं स्वाध ीनता प्राप्त करने के साथ ही भौतिक विकास को प्राप्त करने की थी। जो कि शिक्षा के समुचित प्रचार एवं प्रसार द्वारा ही संभव था। अतः भारतीय मनीषियों एवं विचारकों ने भारतीय समस्याओं के निराकरण हेतु भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। मालवीय जी, जिन्होने शिक्षा की एक राष्ट्रीय नीति की हिमाकत की थी ।

मालवीय जी भारतीय पुनर्जागरण के एक महान चिन्तक एवं अग्रणी राजनेता थे। उनकी गणना एक प्रसिद्ध राष्ट्रप्रेमी नायकों में की जाती है। उनका हिन्दु जाति, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू दर्शन मे अटूट विश्वास था। उनका मानना था कि भारतीय आदर्शों के





माध्यम से ही हम टूटते हुए आधुनिक मानव समस्त को बचा सकते हैं। शिक्षा ही एकमात्र माध्यम है जिसके माध्यम से भारतीय संस्कृति की रक्षा व विकास किया जा सकता है। धार्मिक शिक्षा को मालवीय जी बहुत अधिक महत्व देते थे। वे स्वयं में एक बहुत बड़े धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उनका मानना था कि वर्तमान शोचनीय दशा की एकमात्र अमोघ औषधि यही है कि जन समाज में शिक्षा क प्रचार किया जाए तथा धर्म को उचित आसन पर प्रतिष्ठित किया जाए। उन्होने कहा है कि– "हमारा धर्म औरों के मतों का मान करना सिखाता है, सहनशील होना बताता है और किसी पर आक्रमण करने की शिक्षा नहीं देता है।"

उन्होने सदैव सभी धर्मों को समान रूप से सम्मान प्रदान किया। उनकी धार्मिक भावना मनुष्यता से विभूषित थी वे धार्मिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों मे उन व्यापक और उदार भावनाओं को प्रोत्साहित करना चाहते थे जो मनुष्य के बीच मातृत्व की भावना का विकास करें। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को धर्म का उपदेश देते समय वे सदा इसका ध्यान रखते थे। उनका उपदेश देते समय वे सदा इसका ध्यान रखते थे। उनका उपदेश निःसंदेह नैतिकता एवं देश–प्रेम से समन्वित तथा उदात्त मानवीय भावना से अनुप्राणित होता था।

शिक्षा के माध्यम से ही वे आधुनिक भारत तथा उसके भावी नागरिकों का निर्माण करना चाहते थे। मालवीय जी के शिक्षा के ध ार्मिक तथा राष्ट्रीय विचारों के विपरीत जे. कृष्णमूर्ति जी राष्ट्रवाद से और अधिक परे जाते हुए मानव के संपूर्ण परिवर्तन की बात कही। उनके अनुसार समाज परिवर्तन तथा राष्ट्र परिवर्तन आदि सभी गौण उद्देश्य हैं परंतु शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है व्यक्ति का संपूर्ण परिवर्तन।

मालवीय जी एक सशक्त राष्ट्र को उद्देश्य बनाकर व्यक्ति का विकास शिक्षा के माध्यम से करना चाहते थे जबकि जे. कृष्णमूर्ति जी

व्यक्ति विशेष मे वांछित परिवर्तन कर के संपूर्ण समाज मे परिवर्तन लाना चाहते थे। उनके अनुसार समस्या की जड़ व्यक्ति के मस्तिष्क में ही मौजूद है। इसलिए जब तक एक व्यक्ति का संपूर्ण परिवर्तन नहीं हो जाता हम विश्व का अथवा समाज का संपूर्ण परिवर्तन संभव नहीं है। व्यक्ति का संपूर्ण परिवर्तन से तात्पर्य मानव मस्तिष्क का संपूर्ण परिवर्तन। ये मानव ही है जो समाज की रचना करता है तथा परिवर्तन की चाहे जो भी प्रकृति हो उसका आरंभ सदैव व्यक्ति से ही होगा। आज विश्व मे जो भी घटनाएं हो रही हैं उसका मूल कारण मानव व्यवहार है जो मानव की विभिन्न मनोवैज्ञानिक दशाओं को दर्शाता।

अतः उन्होने संपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन की बात कही है न कि मात्र मानव विचारों में परिवर्तन क्योंकि मानव विचार तो परिणाम हैं स्त्रोत नहीं हैं। मदन मोहन मालवीय जी एक सच्चे राष्ट्रभक्त थे ओर शिक्षा द्वारा बच्चों में राष्ट्रीयता की विकास की बात करते थे। आत्मिक उन्नति को तो ये मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मानते थे। महामना जी शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का एकीकरण एवं नवनिर्माण करना चाहते थे वह ऐसे व्यक्ति का निर्माण काना चाहते थे जो अपने पैरों पर खड़े हो सके। महामना जी की शिक्षा के व्यवहारिक तथा जीविकोपार्जन परक आधुनिकतम शिक्षा के पक्ष में थे। शिक्षा में आमूल परिवर्तन संबंधी उनके विचार युग की मांग के अनुरूप प्रगतिशील एवं आधुनिक है। आपके अनुसार शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य कि वह व्यक्ति को अधिक से अधिक अवसर प्रदान करे ताकि मनुष्य के उत्कर्ष की गति अधिक हो सके तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका विकास हो सके एवं उसके मानवीय सद्गुणों का विकास हो सके और अवगुणों का विलोपन हो सके। मालवीय जी सच्चे समाज सेवक और अपनी संसकृति के सच्चे अनुयायी थे। ये शिक्षा द्वारा संस्कृति की रक्षा पर बहुत बल देते थे। चरित्र को ये



मनुष्य का अति आवश्यक गुण मानते थे। अतः शिक्षा के द्वारा उसके विकास पर भी बल देते थे।

मालवीय जी का ही यह मानना था कि शिक्षण विधियां छात्र के अनुकूल होनी चाहिए न कि छात्र को शिक्षण विधियों के अनुकूल, अनुसार करना चाहिए। चूंकि शिक्षण एक कला और इसमें पारंगत होने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होती है। एक शिक्षक को शिक्षा प्रदान करने से पूर्व बालक को किस प्रकार शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए यह जानना आवश्यक है। इस हेतु शिक्षक को शिक्षण सिद्धांतों का ज्ञान व समझ आवश्यक है। महामना मालवीय जी का मानना था कि प्रत्येक छात्र का जन्म पूर्ण शक्तियों व क्षमताओं के साथ होता है तथा शिक्षा के माध्यम से हम उनका संपूर्ण विकास कर सकते हैं छात्र को शिक्षा प्रदान करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि छात्र के सर्वांगीण विकास हेतु उपर्युक्त व्यवस्था की जानी चाहिए। विद्यालय में एक ऐसा सृजनात्मक वातावरण का निर्माण किया जाए जिसमे रहकर छात्र अपना संपूर्ण विकास कर सके। छात्रों को श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान करने हेतु उन्होने अनेक शिक्षण विधियों को भी प्रस्तावित किया जिसमें से प्रमुख है— आगमन—निगमन विधि, मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधि, व्याख्यान विधि, स्वाध्याय विधि, क्रिया एवं अभ्यास विधि इत्यादी। महामना जी की विचारधारा व्यवहारिक एवं कार्यानुमुखी थी। वे छात्रों में आत्म विश्वास का जागरण क्रियात्मकता एवं करके सीखने के द्वारा करना चाहते थे।

मालवीय जी परंपरागत विधियों के साथ—साथ उस समय की नवीन विधियों—निरीक्षण, कर्मशाला और प्रयोगशाला के प्रयोग पर भी बल देते थे। आपका स्पष्ट मत था जो विषय अथवा क्रिया जिस विधि का प्रयोग करना चाहिए। आपने स्वाध्याय को भी आवश्यक बताते हुए स्पष्ट किया है कि कक्षा मे थोड़े से समय मे छात्रों को सबकुछ नहीं बताया जा सकता है अतः आवश्यक है कि वे पुस्तकालय,

वाचनालय और घर पर यथा विषय पर भिन्न–भिन्न अधिकारी विद्व ानों की पुस्तके पढ़ें, पढ़ने के बाद उस पर चिन्तन मनन करें और तत्संबंधी सही तथ्य जानने का प्रयत्न करें। इन्होने स्पष्ट किया कि स्वाध्याय तभी सफल हो सकता है जब छात्र एकाग्र चित्त होकर करें। महामना जी के द्वारा प्रस्तावित शिक्षण विधियों का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उनकी शिक्षण विधि राष्ट्रीय चेतना का जागरण करने वाली, जीविकोपार्जन मे सक्षम बनाने वाली आधुनिक प्रविधि पर अवलंबित, तकनीकी, अध्यात्मिक, राजनीतिक एवं औद्योगिक शिक्षा का ज्ञान कराने वाली और आत्मबल का विकास करने वाली है महामना जी की शिक्षण विधि उनके युग की आकांक्षा के अनुरूप प्रगतिशील एवं आधुनिक है।

महामना मदन मोहन मालवीय जी एक व्यवहारवादी व्यक्ति के स्वामी थे अतः उनका मानना था कि अध्यापक मात्र रूढ़ियों ओर आदर्शों से ही व जुड़ा रहे अपितु वह यथार्थ तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी अपनाएं ताकि वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों एवं समस्याओं का समाधान किया जा सके। 14 दिसंबर, 1929, मालवीय जी ने दीक्षांत भाषण में स्पष्ट किया कि :—

"अध्यापक को यह बात का स्पष्ट रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि उनका उत्तरदायित्व कक्षा से संबंधित संपूर्ण विषयों के सहारे बच्चों का संपूर्ण विकास करना है। इसलिए उन्हे स्वयं नियमों का पालन, नियमबद्धता एवं अपने कार्य का कुशल सम्पादन करना चाहिए जिससे बच्चों में अनुशासन की भावना विकसित हो।"

मालवीय जी के शिक्षक के विषय में व्यक्त किए गए विचार सर्वमान्य हैं कि शिक्षक को अपने विषय का पंडित होना चाहिए। सत्यानुवेशी होना चाहिए, अपने छात्रों के प्रति समर्पित होना चाहिए और समाज सेवक और राष्ट्र भक्त होना चाहिए। आज इस भौतिकवादी युग में



भी वे ही शिक्षक श्रद्धा के पात्र होते हैं जो ज्ञान से पंडित होते हैं और आचरण से शुद्ध और सात्विक होते हैं।

इस प्रकार मालवीय जी के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह अनुभव करतों हैं कि महामना शिक्षक के व्यक्तित्व की कल्पना स्वयं के व्यक्तित्व व चिंतन के अनुरूप ही करते थे। महामना जी ने स्वयं की ही भांति प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति तथाा आधुनिक चिन्तन से मुक्त आदर्श शिक्षक की छवि प्रस्तुत की है उनका मानना था कि अध्यापक को अपने अंदर गुरूकुल के गुरू एवं आधुनिक विज्ञान के अध्यापक को समाहित करना चाहिए।

महामना मालवीय जी वैचारिक दृष्टि से आदर्शवादी विचारधारा के पोशक थे। आप विद्यार्थियों के अंदर संयम, सादगी, परिश्रम तथा नियमित जीवन आदि उत्तम गुणों का समावेश करना चाहते थे। 'सादा जीवन उच्च विचार' तो स्वयं उनका भी दैनिक जीवन सिद्धांत था। विद्यार्थियों को सभी बातों में, वाणी में, भोजन में, तथा व्यवहार में संयम रखना चाहिए, पढ़ने लिखने में दत्तचित्त होना चाहिए। आपने छात्रों को एकाग्रचित्त होने के विषय में अनेक बार कहा है कि —

"पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो, पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ यदि तुम्हारी समाधि है यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है।"

अतः मालवीय जी के विचारों के अध्ययन पश्चात् लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि महामना जी अपने शैक्षिक दर्शन के माध्यम से भारत के अंदर एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित करना चाहते थे जिसके माध्यम से ऐसे छात्रों का विकास किया जा सके जो उस समय के समाज व देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। वे निर्भीक, राष्ट्रभक्त, कुशल एवं योग्य विद्यार्थियों का निर्माण करना चाहते थे। वे न तो आदर्शवाद के समान शिक्षक को सवोच्च स्थान पर स्थापित करते थे और न ही प्रकृतिवाद की भांति छात्र को पूर्ण

स्वतंत्रता प्रदान करने की बात करते थे। उन्होने दोनों के पूर्ण सहयोग से शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग शिक्षार्थी होता है जिसको हमें ज्ञान देना, सिखाना या, भविष्य के नागरिक के रूप मे तैयार करना होता है।

महामना मालवीय जी स्वयं अपने जीवन मे संयम और अनुशासन का सदा पालन करते थे। वह यह भी चाहते थे कि विश्वविद्यालय मे एक ऐसा वातावरण विकसित किया जाए जिसमे विद्यार्थी अनुशासित तथा सदाचारी रहते हुए अपना सर्वांगीण विकास करें। वे विद्यार्थियों को मुक्त्यात्मक और दमनात्मक दोनो ही प्रकार के अनुशासन देने के पक्ष में नहीं थे बल्कि वे प्राचीन युग की शिक्षा प्रणाली में प्रभावात्मक अनुशासन का जो आदर्श था उसी के पोशक थे। वे विद्यार्थियों में आत्मानुशासन के विकास के पक्षधर थे।

महामना जी स्वतंत्रता के समर्थक थे वह ये कभी भी नहीं चाहते थे कि व्यक्ति किसी के पराधीन रहे। परंतु उनके अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ निरंकुशता से कदापि भी नहीं था वे अनुशासन से युक्त स्वतंत्रता को चाहते थे। महामना जी ने तत्कालीन भारत के विद्यालयों में दमनात्मक नीतियों का सदैव विरोध किया । उनका मानना था कि बिना स्वतंत्रता के विद्यार्थियों का स्वाभाविक विकास नहीं हो सकता। वे तत्कालीन भारत मे एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था व्याप्त करना चाहते थे जिसमें छात्रों को अपने विचार व्यक्त करने की आजादी हो। मालवीय जी शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों पर बाहरी दबाव अथवा अंकुश कदापि भी नहीं चाहते थे क्योंकि इससे छात्रों का संपूर्ण व्यक्तित्व कुंठित हो जाएगा परंतु साथ ही साथा वे इस व्यवस्था को निरंकुश भी नहीं बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि छात्र अनुशासित रह कर शिक्षा के माध्यम से आत्मविश्वासी तथा स्वालम्बी बन सकें। उनका आत्मिक तथा अध्यात्मिक विकास हो सके। आत्मानुशासन को उन्होने परम् आवश्यक माना है।



महामना मालवीय जी पाठ्यक्रम की विस्तृत संकल्पना से पूर्णरूप से सहमत थे। उनके द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम आदर्शवादी एवं प्रयोगवादी शिक्षा दर्शन का समन्वित रूप है। उन्होने परंपरागत चली आ रही शिक्षण पद्धतियों पर कभी भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सदैव सत्य की सात्विकता को परखने के पश्चात् ही उस पर विश्वास किया। उन्होने अपनी प्राचीन संस्कृति पर बल देते हुए अध्यात्मवाद पर बल दिया तथा साथ ही साथ भौतिक विकास को भी शिक्षण का महत्वपूर्ण लक्ष्य मानते हुए वास्तविकता के कठोर धरातल पर प्रयोगवाद पर भी बल दिया। भाषा के विकास से बुद्धि का बड़ा ही घनिष्ठ संबंध होता है अतः उन्होने विभिन्न भाषाओं जैसे– हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, जर्मन, फ्रेंच, इत्यादि के अध्ययन पर बल दिया। महामना जी ने औद्योगिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर बल देते हुए कहा कि हम इसके माध्यम से देश की बेकारी की समस्या का समाधान कर सकत हैं। उन्होने न केवल व्यक्ति विशेष या देश विशेष का उत्थान करना चाहा वरन् वसुधैव कुटुम्बकम् के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन शिक्षा को माना। अतः महामना जी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम आदर्शवादी, प्रयोगवादी तथा मानवतावादी दर्शनों से प्रभावित था।

मालवीय जी शिक्षा को मानव जीवन के लिए एक आवश्यक संस्कार मानते थे। वे आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते थे इसीलिए शिक्षा का लक्ष्य आत्मोन्नति विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानते थे। आपके अनुसार शिक्षा ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके सहारे मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का विकास किया जा सकता है। अतः मालवीय जी चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों को अपने कार्य क्षेत्र का बाजार न ढूढ़ना पडे और वह दर–दर की ठोकरें न खाए। पं. मदन मोहन मालवीय जी का अटूट विश्वास श्रीमद्भगवत गीता पर था। वे गीता के उपदेशों को अपने तथा छात्रों के व्यवहारिक जीवन मे उतारने की अपील भी करते थे।

## महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी- वर्तमान परिपेक्ष्य में तार्किकता

महामना जी मानव कल्याण के आदर्शों के सम्पादक थे तथा भारतीय संस्कृति को अखण्ड एवं सुरक्षित बनाए रखना चाहते थे और इस भावना के बल पर विश्व कल्याण के इच्छुक थे। महामना जी के शिक्षा के सिद्धांत व दर्शन वसुधैव कुटुम्बकम् की पवित्र भावना से प्लावित एवं परिवर्तनकारी भावना से ओत–प्रोत थे इसी कारण वे कभी भी जीर्ण, शिथिल एवं निष्प्रभावी नहीं हो सकेंगे। उनकी शिक्षा का लक्ष्य भी आदर्श समाज तथा आदर्श राष्ट्र की स्थापना करना था। महामना जी कहते थे कि आदर्शवाद मानव के अध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है तथा आदर्शों की प्राप्ति को अपना परम लक्ष्य मानता है वे व्यक्ति में आचरण एवं व्यवहार में सात्विकता को महत्व देते थे। उन्होने भारतीय अध्यात्मिक संस्कृति को विश्व की संस्कृति में सर्वोपरि स्थान दिया। शिक्षा के वर्तमान परिदृश्य का गंभीरता से अध्ययन करने के पश्चात् पता चलता है कि भारतीय शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों से भटक गई है तथा भारतीय शिक्षा परिवेश इतना दूषित एवं कलुषित हो गया है कि इससे भय लगने लगा है कि कहीं यह राष्ट्र को पतन के गर्त में न ले जाए। भारत जो अतीत मे ज्ञान स्थापना का स्थल माना जाता था जहां विदेशों से लोग केवल ज्ञान पिपासा को शांत करने के लिए आते थे, आज उस अग्रगण्य शिक्षक राष्ट्र ने अपनी स्थिति काफी दयनीय बना ली है। भारतीय जनता आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक रूप से पतन के गर्त मे पड़ी हुई ऊपर उठने के लिए छटपटा रही है। ऐसी कठिन घड़ी में टूटते हुए आधुनिक मानव समाज को प्राचीन भारतीय आदर्श ही बचा सकते हैं।

महामना जी शिक्षा को व्यवहृत स्वरूप देना चाहते थे। वे मात्र पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे वे शिक्षा के माध्यम से छात्रों मे स्वावलम्बन का विकास करना चाहते



थे क्योंकि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के जटिल समाज मे प्रविधि की और वैज्ञानिक साज–सामान के उत्पादन और व्यवहार द्वारा मानव की आवश्यकताएं बढ़कर विकसित हो चुकी है। अतः आप चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों में आजीविका अर्जित करने की पूर्ण क्षमता प्राप्त हो जाए। यदि एक विद्यार्थी विद्यार्जन के पश्चात् भी इधर–उधर भटकता है तो इसे माहमना जी शिक्षा का दोष मानते थे। आपने इसे अर्थकारी शिक्षा की अवधारणा के रूप में स्पष्ट किया है। जो आज के वर्तमान परिपेक्ष्य मे पूर्णतः यथार्थवादी है तथा तार्किक भी है।

महामना जी ने अपने सिद्धांतो को दृढ़ एवं अडिग बनाए रखते हुए भी अपने शैक्षिक व राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अर्वाचीन विचारों को ग्रहण किया। वे समस्याओं का निराकरण यथार्थ वातावरण में करना चाहते थे। वे कदाचित रूढ़िवादी विचारों से चिपके नहीं रहना चाहते थे, वे पूर्णतया प्रगतिशील विचारों के पोषक थे। आपका मानना था कि जो व्यक्ति प्राचीनता से चिपका रहेगा वह अपना तथा अपने देश दोनों का अपकार करेगा इसी मत को दृष्टिगत रखते हुए उन्होने अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विचारधाराओं का सम्यक समन्वय किया। आपने औद्योगिकतन्त्र के त्वरित विकास के लिए विज्ञान एवं तकनीकी पर बल दिया किन्तु भारतीय सांस्कृतिक निजता की रक्षा और उसके पोषण का विचार केन्द्र में था। विज्ञान के बढ़ते हुए कदम के साथ भारतवर्ष की कदम मिलाकर आगे बढ़ता रहे इस हेतु आपने प्राचीन संस्कृति साहित्य, वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि को स्थान दिया वहीं आधुनिक विज्ञानों जैसे–भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, जन्तु विज्ञान, खनन अभियांत्रिकी, भूगर्भ शास्त्र आदि को भी प्रमुखता के साथ पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर बल दिया। मालवीय जी का शैक्षिक दर्शन भारतीय विश्व दृष्टि से उपजा था और इस पर

दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित था, साथ ही नये युग की आकांक्षाओं और देश–देश की व्यापक जनापेक्षाओं के अनुरूप भी था। सृजनशीलता के पुनराविश्करण, कोटि–कोटि जन के स्वीय सन्दर्भ में ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उपाय को देखने की दृष्टि और पश्चिम के नये ज्ञान और तंत्र को आत्मसात् करने के लक्ष्य के साथ अपनी निजता को बचाए ही नहीं रखना, अपितु उस पर दृढ़ होते जाना। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान परिदृश्य में परम आवश्यक विभिन्न संप्रत्यय उदाहरणतया तकनीकी एवं प्रौद्योगिक शिक्षा, राष्ट्रीय विकास हेतु उद्योग–धन्धों का पुनर्जागरण, स्वरोजगार के अवसरों की दिशा में आपने महत्वपूर्ण योगदान दिया। अतः मालवीय जी ने अपने सुदृढ़ पाठ्यक्रम के माध्यम से तीन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया। प्रथम शिक्षा से सुसंस्कृत, संस्कार संपन्न शिक्षित नागरिक बनाना, द्वितीय नागरिक स्वावलम्बी स्वराज के निर्माण में योगदान दें और तृतीय भारत में कृषि एवम् औद्योगिक विकास के द्वारा आत्म–निर्भर, समृद्ध तथा प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करें।

अतः लेखक यह कह सकता है मालवीय जी तत्कालीन परिस्थितियों की संकुचित सोच व सीमाओं तक सीमित न रहते हुए अत्यंत व्यापक क्षेत्र को दृष्टिगत रखा तथा यह उनकी दूरदृष्टिता ही है कि उन्होने शिक्षा को देश की व्यावसायिक आकांक्षा एवम् आवश्यकता के साथ संयुक्त कर देश की स्वतंत्रता के संघर्ष के दिनों मे एक सर्वांगीण शिक्षा दर्शन और उनको क्रियान्वित करने का 'मॉडल' दिया।

मालवीय जी धर्म और शिक्षा मे अटूट संबंध मानते थे। वे मानते थे कि वर्तमान तथा आने वाला युग ह्रास काल है। उसकी रक्षा करना, उसके अव्यवस्थित स्वरूप को व्यवस्थित कर उसका समयानुकूल परिष्कार करना एवं उसकी अखण्डता को बनाए रखना चाहते थे। महामना जी शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का एकीकरण एवं नवनिर्माण करना चाहते थे वह ऐसे विद्यार्थी का



निर्माण करना चाहते थे जो व्यवहारिक तथा जीविकोपार्जन परक हो। आधुनिकतम शिक्षा ग्रहण करें परंतु अपने आदर्शों व मूल्यों को खो कर नहीं। शिक्षा में उनके धर्म व आदर्शों के समावेश संबंधी विचार वर्तमान परिस्थितियों मे बढ़ते द्वेष व द्वंद्व को समाप्त करने हेतु युग की मांग के अनुरूप हैं।

मालवीय जी विद्यार्थी जीवन को गुरूकुल प्रणाली की भांति सादगी और त्याग का प्रतीक मानते थे। महामना का लक्ष्य था देश के लोगों को स्वराज्य के लिए तैयार करना, ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना जो अपने पर भरोसा रखें और सर ऊंचा उठाकर चल सकें। वे भारत मे एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित करना चाहते थे, जिसके द्वारा ऐसे छात्र तैयार होकर निकले जो तत्कालीन भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। वे निर्भीक, कुशल व योग्य छात्रों का निर्माण करना चाहते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का एक चिरस्मरणीय स्मारक है। इस ज्ञान मंदिर से निरंतर ज्ञान–ज्योति प्रकाशित हो रही है। भविष्यद्रष्टा मालवीयजी ने अपने विराट शिक्षा दर्शन द्वारा उस युवा वर्ग को तैयार करने का प्रयास किया जिसकी एक ओर भारत की सनातन परंपरा एवं भारतीय संस्कृति में अनन्य श्रद्धा हो, तो दूसरी ओर वह कहीं से भी औद्योगिकी एवं वैज्ञानिकी तकनीकी शिक्षा में पीछे न रह जाए। प्राच्य और आधुनिकता का ऐसा अद्भुत समन्वय शायद ही भारत के किसी अन्य युगपुरूष में देखने को मिलता है।

मालवीय जी के कार्यकाल में शिक्षा की दिशा सभी दृष्टियों से दयनीय थी। 1921ई. में स्त्रियों की शिक्षा 1.41 प्रतिशत थी। मालवीय जी का मानना था कि स्त्रियों की शिक्षा पुरूषों की शिक्षा से अधि ाक आवश्यक है महामना जी की नारी का स्वरूप कवि जयशंकर प्रसाद जी की नारी 'श्रद्धा' की भांति नहीं, वरन उनकी नारी पाश्चात्य नारी की भांति शस्त्रधारी है, वह दया, पर्दा एवं पुरूषों के हाथ का

खिलौना मात्र नहीं है, वह स्वावलंबी है, शक्ति है और आत्मनिर्भर है। उनका मानना था कि जितनी ही विदुषी, अनुशासन प्रिय गुणों से सम्पन्न लड़कियां जिस समाज मे होंगी उस समाज का उतना ही विकास होगा। उच्च स्तर पर आपने लड़के व लड़कियों के लिए समान पाठ्यक्रम का सुझाव दिया। यद्यपि आपने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महिला महाविद्यालय की अलग से स्थापना की परंतु आप सह–शिक्षा के भी विरोधी नहीं रहे हैं। महामना जी की शैक्षिक विचार धारा का सूक्ष्मता से अध्ययन करने के पश्चात् लेखक निष्कषर्तः यह कह सकता है कि वर्तमान परिदृष्य मे उनके शिक्षा संबंधी विचार प्रगतिषील, परिवर्तनवादी एवं उपयुक्त है। महामना जी का चरम लक्ष्य आदर्ष नारी का निर्माण करना था जिससे कि एक श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण संभव हो सके।

उपर्युक्त पृष्ठों का अवलोकन करने से मालवीय जी के जीवन एवं शैक्षिक विचारों का सम्यक परिचय मिलता है। मालवीय जी का जन्म एक अत्यंत ही गरीब तथा अभावग्रस्त परिवार में हुआ, परंतु उन्होने अपने परिवार की अपेक्षा अपने भारत की जनता की करूण व दयनीय परिस्थिति का बोध किया । अपने राष्ट्र तथा समाज के प्रति उनकी संवेदनशीलता ने ही संभवतः आपको प्रेरणा दी कि भारत अपनी अधिकृत गरिमा को पुनः शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त कर सकता है। इसकी प्राप्ति हेतु उन्होने एक विस्तृत तथा सम्यक शिक्षा व्यवस्था प्रस्तुत की। मालवीय जी द्वारा संकल्पित शिक्षा पौर्वात्य की आध्यात्मिकता तथा पश्चात्य की वैज्ञानिकता तथा भौतिक संपन्नता का सम्मिश्रण थी। विद्यालयों को गुरूकुल की संज्ञा दी तथा विद्यार्थियों को एक ओर जहां वेद, संस्कृत, साहित्य की शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई तो दूसरी ओर वे कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, इंजीनियरिंग इत्यादि की पढ़ाई भी कर सकते थे। मालवीय जी किसी भी प्रकार के भेदभाव के सख्त खिलाफ रहते थे तथा विद्यार्थियों में भी वह



सादगी, ब्रह्मचर्य, आत्मसंयम तथा अनुशासन की भावना विकसित होते देखना चाहते थे। उन्होने छात्रों के संपूर्ण विकास हेतु भारतीय संगीत, नृत्य, चित्रकला, वास्तुकला, अभिनय कला आदि को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग बनाकर उसको पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

महामना पं. मालवीय जी के जीवन का प्रधान उद्देश्य धरती पर अज्ञानता को दूरकर ज्ञान की रोशनी फैलाना था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने उन्हे सच्चे अर्थों मे 'महात्मा' बताया है इसके लिए वे निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षता सदसि वाकृपटुता युधि विक्रमः।
यशसि यामिरूचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धमिंद हि महात्मनाम्।।

'महात्मा' के जो छः लक्षण यहां बतलाए गए हैं, वे महामना मे पूर्ण वैभव के साथ प्रकट थे। विपत्तियों मे धीरता, अभ्युदय में क्षमा, सभा मे वाक्–चातुरी, युद्ध मे विक्रम, यष मे अभिरूचि तथा शास्त्र श्रवण मे अनुराग ये छहों की सत्ता महामना मे पूरे रूप में थी। 'महामना' उपाधि भी उनपर सर्वथा चरितार्थ होती थी (सम्मेलन पत्रिका, पृ. 46)

निष्कर्षतः पं. मालवीय जी ने एक व्यक्ति से लेकर एक राष्ट्र तक के सर्वांगीण विकास का शिक्षण प्रस्तुत किया है। उनके शिक्षण संबंधी विचार अत्यंत ही गूढ़ व व्यापक हैं। पं. मालवीय जी ने देश के संतुलित तथा संपूर्ण विकास को ठोस आधार–'शिक्षा' को प्रस्तुत किया। युग संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता अक्षुण्य है।

# सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची


1. महामना के लेख–सम्पा. डॉ. उमेश दत्त तिवारी, प्रकाशक–महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, 2004
2. महामना के भाषण–सम्पा. डॉ. उमेश दत्त तिवारी, प्रकाशक–महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, 2004
3. महामना के प्रेरक प्रसंग (3 खण्ड, पक्की जिल्द सिरीज)–सम्पा. डॉ. उमेश दत्त तिवारी, प्रकाशक–महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, 2004
4. मालवीय जी के लेख और भाषण (धार्मिक भाग–1)सम्पा. डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, प्रकाशक–बी.एच.यू., सन् 1962,
5. तीस दिन मालवीय जी के साथ, लेखक–पं. रामनरेश त्रिपाठी नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 1942
6. महामना मदन मोहन मालवीय (जीवन एवं नेतृत्व), प्रो. मुकुट बिहारी लाल, प्रकाशक, बी.एच.यू., 1978
7. मालवीय जी के लेख–संपा. पद्मकान्त मालवीय, नेषनल पब्लिषिंग हाउस, दिल्ली 1962
8. मालवीय जीः जीवन झलकियां सम्पा. पदमकान्त मालवीय, नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली 1962
9. महामना मालवीय जी और हिन्दी पत्रकारिता, सम्पा. डॉ. लक्ष्मीशंकर व्यास, प्रकाशक, बी.एच.यू., 1987







10. महामना की छाया में 18 वर्ष, शिवधनी सिंह, काशी ज्ञानमण्डल, 1989
11. महामना के सपनों का भारत– सम्पा. ईश्वरी प्रसाद वर्मा, किताब घर, गांधी नगर, दिल्ली, 1967.
12. भारत भूषण महामना पं. मदन मोहन मालवीय –डॉ. उमेश दत्त तिवारी, प्रकाशक, बी. एच. यू., 1988
13. महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी जीवनी, वेंकटेश नारायण तिवारी, प्रकाशक–बी.एच.यू., 1962
14. 'प्रज्ञा' जर्नल, मालवीय जयंती विषेशांक, भाग 6, 1961, बी.एच.यू.
15. 'प्रज्ञा' जर्नल, स्वर्ण जयंती अंक, भाग–2 (2), 1966. बी.एच.यू.
16. 'प्रज्ञा' जर्नल, हीरक जयंती अंक, 21–23, 1976–77, बी.एच.यू.
17. 'सम्मेलन पत्रिका–श्रद्धांजलि विषेशांक', प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भाग 48, संख्या 2–4, शक 1884
18. पद्मकान्त मालवीय : मालवीयजी के लेख, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, जून 1961 पृष्ठ51.
19. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के दीक्षान्त भाषण, 22 जुलाई सन् 1935 से उद्धृत.
20. हिन्दू, मुसलमानों की खुली सभा 1931 ई0 में दिये गये भाषण का अंश.
21. पद्मकान्त मालवीय (सम्पादक) : मालवीयजी : जीवन झलकियां, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 202.
22. द्रष्टव्य–महात्मा गांधी : एसेज एण्ड रेफ्लेक्शनस् ऑन हिज लाइफ एण्ड वर्क, पृष्ठ 16,17; सम्पादक एस. राधाकृष्णन् (70वें जन्म दिन पर समर्पित).

23. द्रष्टवय, गांधी जी : हिज लाइफ एण्ड वर्क, पृष्ठ 76 (उनके 75वें जन्म दिन पर प्रकाशित).

24. लेजीस्लेटिव असेम्बली डिबेट Vol. VI, भाग 2, सितम्बर 7, 1925, पृ0 996–97

25- Parmanand, Madan Mohan Malviya- An Historical Biography (मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1985) पृ0 164 से, अनुवादित मेरे द्वारा।

26- Prof. Chandra Kala Padia, 'Some Refelections on Mahamana's Secular Thought' प्रकाशित लेख, प्रज्ञा, काशी हिन्दू विष्वविद्यालय प्रत्रिका, महामना स्मृति अंक 39–41 (भाग 1–2) 1993–1996, संपादक डॉ. राममोहन पाण्डे द्वारा, पृ0 260 से, अनुवादित मेरे द्वारा।

27. आज, अक्टूबर 10, 1941, मालवीयजी का भाषण इलाहाबाद विष्वविद्यालय विद्यार्थी संगठन के समझ।

28. आर्य जीवन–दर्शनः श्री मोहनलाल महती 'वियोगी', पटना बिहार, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमीः 1971

29. आत्मकथा : महात्मा गांधी, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 1948

30. खादी मीमांसा : बालूभाई मेहता, नई दिल्ली, सस्ता साहित्स मण्डल, 1946

31. तीस दिन मालवीय जी के साथ : पं. रामनरेश त्रिपाठी, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 1946

32. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : पं. रामजी उपाध्याय, वाराणसी, भारतीय संस्कृति–संस्थानम्, 1965

33. धर्म की उत्पत्ति और विकास (फ्रेडरिक मैक्सम्यूलर) : अनु. ब्राह्मदत्त दीक्षित, इलाहाबाद, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, 1968



34. धर्म–दर्शन, लक्ष्मीनिधि शर्मा, वाराणसी, गंगासरन एण्ड सन्स, 1972.

35. भारत के आदर्श पुरूष, संसारचन्द, दिल्ली, उमेश प्रकाशन, 1979.

36. भारतीय पुनर्जागरण और मदनमोहन मालवीय, डॉ. कृष्णदत्त द्विवेदी, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाषन,1981

37. महामना पं. मदन मोहन मालवीय (खण्ड 1)–पं. सीताराम चतुर्वेदी, वाराणसी, संवत् 1993 वि.

38. महामना पं. मदन मोहन मालवीय, पं. सीताराम चतुर्वेदी, वाराणसी, का. हि. वि. वि., सन् 1937

39. महामना मदन मोहन मालवीय, जीवन एवं नेतृत्व, प्रो. मुकुट बिहारी लाल, का. हि. वि. वि., मालवीय अध्ययन संस्थान, 1978

40. महामना मालवीय : लेख और भाषण (धार्मिक–1), संपा.–वासुदेव शरण अग्रवाल, का. हि. वि. वि., 1962

41. महामना मालवीय, ब्रजमोहन व्यास, इलाहाबाद, साधना, 1963

42. महामना मालवीय, यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव, वाराणसी, अशोक पुस्तक मन्दिर, 1961

43. महामना पं. मदन मोहन मालवीय की जीवनी, (संकलन संपादन) वेंकटेश नारायण तिवारी, का. हि. वि. वि. 1962

44. मालवीय जी के सपनों का भारत, (संपा.), डॉ. ईश्वरी प्रसाद वर्मा, दिल्ली, सस्ता साहित्य केन्द्र, 1967

45. रामायण कालीन समाज एवं संस्कृति, डॉ. जगदीश चन्द्र भट्ट, दिल्ली, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1984

46. हमारी परम्परा, वियोगी हरि, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 1967

47. हिन्दू समाज मे परिवर्तन की प्रक्रिया, डॉ. देवी प्रसाद सिंह, गोरखपुर, पूर्वी प्रकाशन, 1984

48. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, लाहोर, मेहरचन्द कं., 1946

49. Hindu Social Organization; P. H. Prabhu, Bombay, Popular, 1979.

50- History of the B.H.U.; Das and Somaskandan, B. H. U., 1966.

51- History of The Benares Hindu University, Dar and Somaskandan, BHU, 1966.

52- Honorable Pt. Madan Mohan Malviya : Life & Speeches, Ganesh and Co. Madars, 1918.

53- Inspiring Episodes on Mahamana, Pt. Ed.Dr. Umesh Dutta Tiwari, Pub.-Mahamana Malaviya Foundation, 2002

54- M.M. Malaviya, The Immanence of God (Gorakhpur, Gita Press, 1936).

55- Madan Mohan Malaviya : An Historical Biograpy, 2 Vols., Parmanand, BHU, 1985.

56- Mahamana Commemoration Volume, B. H. U., 1932

57- Mahamana Malaviya : Birth Centenary Commemoration volume, 25 Dec., 1961.,

58- Mahamana Malaviyaji : From Tourch Bearers, V.A. Sundaram, BHU Press, 1948.

59- Mahamana Malviyaji (From-Tourch-Beares's); V. A. Sundaram, B. H. U., 1948.

60- Malaviyaji : Life and Speeches; Madras, Ganesh and Co., 1978



61- Malaviyaji Birth Centenary Commemoration Volume, 1961, BHU

62- Pt. Sitaram Chaturvedi (ed.) Mahamana Pr. M.M. Malviya, Vol. 18 Kashi Paush Krishnashtami, 1973 V.S. pp 319-320.

63- Pt. Sitaram Chaturvedi (ed.) Mahamana Pr. M.M. Malviya, Vol. 3 Kashi, Paush Krishnashtami, 1973 pp 142-143.

64- Speeches and Writings of pandit Madan Mohan Malviya (Madars, G.A. Natesan & co., 1919) .

■ ■ ■